गद्य शिखा

पाठ्य पुस्तक

बी.सी.ए. प्रथम सेमिस्टर
चयन आधारित क्रेडिट पद्धति
(सी.बी.सी.एस.)

संपादक

डॉ. विनय कुमार यादव
डॉ. सबीहा तसनीम

BENGALURU CENTRAL UNIVERSITY
BE BOUNDLESS

प्रकाशक

प्रसारांग
बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय
बेंगलूरु–560 001

GADYA SHIKHA : Edited by Dr Vinay Kumar Yadav & Dr Sabiha Tasnim; Published by Prasarang, Bengaluru Central University, Bengaluru - 560 001 PP. 92+VIII

© : बेंगलूर केन्द्र विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण : 2019

संपादक :

डॉ. विनय कुमार यादव

डॉ. सबीहा तसनीम

प्रकाशक :

प्रसारांग

बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय

बेंगलूरु–560001

भूमिका

बेंगलूरु विश्वविद्यालय के त्रिभाजन के बाद, यह पहला अवसर है कि बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय के अन्तर्गत हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. शेखर के मार्गदर्शन में हिन्दी अध्ययन मण्डल ने बी.सी.ए. के छात्रों के लिए नव पाठ्य पुस्तक का निर्माण किया गया है। 2004–05 में लागू हुए सेमिस्टर प्रणाली का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत पुस्तक चयन आधारित क्रेडिट पद्धति (सी.बी.सी.एस.) पर आधारित पाठ्यक्रम है।

आशा है कि प्रस्तुत संकलन बी.सी.ए. के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जिन लोगों का योगदान रहा है, उनके प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

इस संकलन को बहुत कम समय में उत्कृष्ट रूप से छापने वाले मैसूर विश्वविद्यालय के मुद्रणालय के समस्त कर्मचारियों तथा पुस्तक के प्रकाशक, प्रसारांग बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय के प्रति भी हम आभारी हैं।

प्रो. जाफट एस.
कुलपति
बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय
बेंगलूरु–560001

प्रकाशक की बात

बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय ने बी.सी.ए. स्नातक वर्ग के लिए चयन आधारित क्रेडिट पद्धति (सी.बी.सी.एस.) के अनुसार हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर के मार्गदर्शन में हिन्दी अध्ययन मंडल के द्वारा प्रस्तुत पाठ्य पुस्तक **गद्य शिखा** का निर्माण किया है।

इस पाठ्य-पुस्तक को समय पर तैयार करने में विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. जाफट एस. का प्रोत्साहन व सहयोग रहा है, तदर्थ मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

प्रस्तुत संकलन को अल्प समय में सुन्दर ढंग से छापने में सहयोग करने वाले मुद्रणालय, मैसूर विश्वविद्यालय के सभी कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ।

प्रसारांग
बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय
बेंगलूरु-560001

अध्यक्ष की बात

साहित्य के क्षेत्र में समय और समाज के परिवर्तन के अनुरूप साहित्यकारों द्वारा कुछ न कुछ नया लिखा जाता रहा है। साहित्यकार समाज का अभिन्न अंग होते हैं, इसलिए उनकी रचनाओं को आलोचनात्मक दृष्टि से परखना पड़ता है। आलोचना और रचना में गहरा सम्बन्ध होता है। इस परिप्रेक्ष्य में आज के युवा छात्र वर्ग और सेमिस्टर प्रणाली को ध्यान में रखते हुए इस पाठ्य संकलन में कुछ ऐसी गद्य विधाओं को शामिल किया गया है, जो मानव जीवन के समग्र पक्षों को दर्शाती हैं। इनका अध्ययन छात्रों में जीवन दर्शन, मानवीय संवेदनाओं और जीवन मूल्यों के प्रति नई सोच विकसित करने के साथ ही मानवीय पक्ष को सशक्त करेगा, इसी दृष्टि से इस पाठ्य पुस्तक का निर्माण किया गया है। इस कार्य में सहयोग देने वाले संपादकद्वय डॉ. विनय कुमार यादव एवं डॉ. सबीहा तसनीम के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

इस नई पाठ्य पुस्तक के निर्माण में विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय डॉ. जाफट एस. ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

पुस्तक के प्रकाशक प्रसारांग, बेंगलूरू केन्द्र विश्वविद्यालय एवं मैसूर विश्वविद्यालय मुद्रणालय के सभी कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

डॉ. शेखर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बेंगलूर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू–560056

सम्पादक की कलम से...

हिन्दी साहित्य बहु–आयामी है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की यात्रा के दौरान हिन्दी में विपुल रूप से परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहा है। इस दौरान हिन्दी साहित्यिक विधाओं में विशेषतः गद्य के विभिन्न रूपों में पर्याप्त रचनाएं हुई हैं, जिनसे हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है।

हिन्दी समन्वय, एकता और अखण्डता की भाषा भी है। आधुनिक युग की सभी भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी के साथ हिन्दी ने समन्वय स्थापित किया है। हिन्दी भाषा की यह समन्वय प्रवृत्ति उसके साहित्य में भी पायी जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साहित्य की उदारता ने ही भाषा को भी उदार बनाया है। इस प्रकार हिन्दी भाषा और उसका साहित्य दोनों ही राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गए हैं।

संस्कृत, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश के साहित्यों की परम्परा विकसित होकर हिन्दी साहित्य लगभग बारह सौ वर्षों की सुदीर्घ यात्रा में निरन्तर राष्ट्रीय एकता का वाहक बनकर विकास की ओर बढ़ रहा है। आजादी के पहले और बाद में पाश्चात्य साहित्य का भी काफी प्रभाव हिन्दी साहित्य पर हुआ।

हिन्दी साहित्य की यात्रा के इस युग में कहानी, हास्य–व्यंग्य, लेख, आत्मकथा, उपन्यास, एकांकी, रिपोर्ताज, यात्रा वृतांत, संस्मरण, निबन्ध जैसे अनेक विधाएँ गद्य साहित्य में पनपीं। आज विज्ञान और वैश्वीकरण के इस दौर मे हिन्दी गद्य साहित्य ने अपना एक सुदृढ़ स्थान और पहचान बना लिया है।

आज किसी भी साहित्य की पहुंच दुनिया के कोने–कोने में सम्भव हो पायी है तो इसमें कम्प्यूटर तकनीक का बहुत बड़ा योगदान है और अगर हम कम्प्यूटर तकनीक के विद्यार्थियों को साहित्य से जोड़े रख सकें, तो आनेवाले

समय में साहित्य की नवकृति से वे खुद भी अवगत होंगे और दुनिया को भी द्रुतगति से इसका परिचय कराते हुए आगे ले जाएंगे।

गद्य शिखा का यह संकलन बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय के बी.सी.ए. (प्रथम सेमिस्टर) स्नातक वर्ग के लिए चयन आधारित क्रेडिट पद्धति (सी.बी.सी.एस.) पर आधारित पाठ्यक्रम है। इस गद्य संकलन का प्रमुख उद्देश्य अहिन्दी भाषी प्रदेशों के विद्यार्थियों को हिन्दी गद्य साहित्य की विविध विधाओं से परिचित कराना है। विद्यार्थियों की अभिरुचि और आवश्यकता को ध्यान में रखकर संकलन की पाठ्यसामग्री को रोचक और ज्ञानवर्धक बनाने का प्रयास किया गया है।

इस संकलन में जिन साहित्यकारों की रचनाएं प्रकाशित हुई हैं, उनके प्रति हम आभारी हैं। आशा है कि प्रस्तुत संकलन, विद्यार्थियों में साहित्य की समझ एवं रुचि को बढ़ाने में सहयोग करेगा और साथ ही उनमें सामाजिक सरोकार की भावनाओं को मजबूत करेगा।

यह संकलन उनमें राष्ट्रीय चेतना और एकता के विचार को प्रबल बनाने में सफल होगा।

डॉ. विनय कुमार यादव
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बिशप कॉटन वुमेन क्रिश्चियन कॉलेज,
बेंगलूरु–560027

अनुक्रमणिका

			पृष्ठ संख्या
1.	सवा सेर गेहूँ (कहानी)	प्रेमचन्द	1.
2.	प्रेमियों की वापसी (व्यंग्य)	हरिशंकर परसाई	12
3.	तीसरी कसम के सेट पर तीन दिन (रिपोतार्ज)	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	23
4.	महाभारत की एक सांझ (एकांकी)	भारतभूषण अग्रवाल	35
5.	तुम्हारी मां कहां है (चिंतनपरक निबन्ध)	डॉ. रामदरश मिश्र	54
6.	डॉ. विनायक कृष्ण गोकाक (संस्मरण)	विष्णु प्रभाकर	66
7.	बेंच की संवेदना (निबन्ध)	ज्ञानचंद मर्मज्ञ	73
8.	यूनीकोड एक परिचय (लेख)	केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान	82

राजभाषा विभाग

परिशिष्ट :

1. वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली 88

1. सवा सेर गेहूँ

– प्रेमचंद

किसी गाँव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था। वह सीधा–सादा गरीब आदमी था, अपने काम से काम न किसी के लेने में न देने में। छक्का पंजा न जानता था; छल प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी, ठगे जाने की चिन्ता न थी, ठग विद्या भी न जानता था। भोजन मिला खा लिया न मिला तो चबेने पर काट दी, चबेना भी न मिला तो पानी ही पी लिया, और राम का नाम लेकर सो रहा । किन्तु जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता था तो उसे इस निवृति मार्ग का त्याग करना पड़ता था। विशेष कर जब साधु महात्मा पदार्पण करते थे तो उसे अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था पर साधु को कैसे भूखा सुलाता? भगवान के भक्त ठहरे? एक दिन संध्या के समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया।

तेजस्वी मूर्ति थी, पीताम्बर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमंडल हाथ में, खड़ाऊँ पैर में, ऐनक आँखों पर। संपूर्ण वेश उन महात्माओं का–सा था जो रईसों के प्रासादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए रुचिकर भोजन करते हैं। घर में जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे खिलाता, प्राचीन काल में जौ का चाहे जो कुछ महत्व रहा हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरुषों के लिए दुष्पाच्य होता है। बड़ी चिंता हुई, महात्मा जी को क्या खिलाऊँ? आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेंहूँ का आटा उधार लाऊँ, पर गाँव भर में गेंहूँ का आटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतः देवताओं का पदार्थ कैसे मिलता?

सौभाग्य से गाँव के विप्र महाराज के यहाँ से गेंहूँ मिल गये। उसने सवा सेर गेंहूँ उधार लिया और स्त्री से कहा कि पीस दे। महात्मा जी ने भोजन किया,

लम्बी तान कर सोये। प्रात:काल आशीर्वाद देकर अपनी राह ली। विप्र महाराज साल में दो बार खलिहानी किया करते थे। शंकर ने दिल में कहा– सवा सेर गेंहूँ इन्हें क्या लौटाऊँ, पसेरी के बदले कुछ ज्यादा खलिहानी दे दूँगा, वह भी समझ जायेंगे, मैं भी समझ जाऊँगा। चैत में जब विप्रवर पहुँचे तो उन्हें डेढ़ पसेरी के लगभग गेंहूँ दे दिया और अपने को उऋण समझ कर उसकी कोई चर्चा न की। विप्र ने भी फिर कभी गेहूँ न माँगा। सरल शंकर को क्या मालूम था कि यह सवा सेर गेंहूँ चुकाने के लिए उसे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा?

सात साल गुजर गये। विप्र जी विप्र से महाजन हुए, शंकर किसान से मजूर हो गया। उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था। एक साथ रह कर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गये थे । शंकर ने चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाये, किन्तु परिस्थिति ने उसे विवश कर दिया।

जिस दिन अलग–अलग चूल्हे जले, वह फूट–फूट कर रोया। आज से भाई–भाई शत्रु हो जायँगे, एक रोयेगा तो दूसरा हँसेगा, एक के घर में मातम होगा तो दूसरे के घर में गुलगुले पकेंगे। प्रेम का बंधन, खून का बंधन, दूध का बंधन आज टूटा जाता है। उसमें भगीरथ परिश्रम से कुलमर्यादा का वृक्ष लगाया था, उसे अपने रक्त से सींचा था, उसको जड़ से उखड़ता देखकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। सात दिनों तक उसने दाने की सूरत तक न देखी। दिन भर जेठ की धूप में काम करता और रात को मुँह लपेट कर सो रहता। इस भीषण वेदना और दुस्सह कष्ट ने रक्त को जला दिया, माँस और मज्ञा को घुला दिया। बीमार पड़ा तो महीनों तक खाट से न उठा। अब गुजर बसर कैसे हो? पाँच बीघे के आधे खेत रह गये, एक बैल रह गया, खेती क्या खाक होती। अंत में यहाँ तक नौबत पहुँच गयी कि खेती केवल मर्यादा रक्षा का साधन मात्र रह गयी। जीविका का भार मजूरी पर आ पड़ा।

सात वर्ष बीत गये, एक दिन शंकर मजूरी करके लौटा तो राह में विप्र जी ने

टोक कर कहा–शंकर, कल आके अपने उधार का हिसाब कर ले। तेरे यहाँ साढ़े पाँच मन गेहूँ कब के बाकी पड़े हुए हैं और तू देने का नाम ही नहीं लेता, हजम करने का मन है क्या?

शंकर ने चकित होकर कहा–मैंने तुमसे कब गेंहूँ लिए थे जो साढ़े पाँच मन हो गये? तुम भूलते हो, मेरे यहाँ किसी का न छटाँक भर अनाज है न एक पैसा उधार।

विप्र – इसी नीयत का तो यह फल भोग रहे हो कि खाने को नहीं जुड़ता।

यह कहकर विप्र ने उस सवा सेर गेहूँ का जिक्र किया, जो आज से सात वर्ष पहले शंकर को दिया था। शंकर सुनकर अवाक् रह गया। हे ईश्वर! मैंने इन्हें कितनी बार खलिहानी दी, इन्होंने मेरा कौन–सा काम किया? जब पोथी–पत्रा देखने साइत–सगुन विचारने द्वार पर आते थे, तो कुछ न कुछ दक्षिणा ले ही जाते थे। इतना स्वार्थ! सवा सेर अनाज को अंडे की भाँति सेंक कर रखा और आज यह पिशाच खड़ा कर दिया, जो मुझे निगल जाएगा। इतने दिनों में एक बार भी कह देते तो मैं गेंहूँ तौल कर दे देता, क्या इसी नीयत से चुप बैठे रहे? शंकर बोला– महाराज नाम लेकर तो मैंने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानी में सेर–सेर, दो–दो सेर दिया है। अब आप साढ़े पाँच मन माँगते है, मैं कहाँ से दूँगा?

विप्र–लेखा जौ–जौ बखसी सौ–सौ! तुमने जो कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं। चाहे एक की जगह चार पसेरी दे दो। तुम्हारे नाम बही में साढ़े पाँच मन लिखा हुआ है, जिससे चाहो हिसाब लगवा लो। दे दो तो तुम्हारा नाम छेंक दूँ, नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा।

शंकर – पांड़े, क्यों गरीब को सताते हो, मेरे खाने का ठिकाना नहीं इतना गेहूँ किसके घर से लाऊँगा?

विप्र – जिसके घर से चाहो लाओ, मैं छटाँक भर न छोड़ूँगा, यहाँ न दोगे, भगवान के घर दोगे।

शंकर काँप उठा। हम पढ़े–लिखे आदमी होते तो कह देते अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगे। वहाँ की तौल यहाँ से कुछ बड़ी तो न होगी। कम से कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता। किन्तु शंकर इतना तार्किक, इतना व्यवहार चतुर न था। एक तो ऋण, वह भी ब्राह्मण का – बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊँगा, इस ख्याल से उसे रोमांच हो आया। शंकर बोला – महाराज, तुम्हारा जितना होगा यहीं दूँगा, ईश्वर के यहाँ क्यों दें, इस जनम में तो ठोकर खा ही रहा हूँ, उस जनम के लिए क्यों बोऊँ? मगर यह कोई न्याय नहीं है। मैं तो दे दूँगा लेकिन तुम्हें भगवान के यहाँ जवाब देना पड़ेगा।

विप्र–वहाँ का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाई–बंधु हैं। ऋषि–मुनि सब तो ब्राह्मण ही हैं, देवता भी ब्राह्मण हैं, जो कुछ बने बिगड़ेगी, सँभाल लेंगे। तो कब देते हो?

शंकर–मेरे पास रखा तो नहीं, किसी से माँग–जाँच कर लाऊँगा तभी न दूँगा ।

विप्र – मैं यह न मानूँगा। सात साल हो गये, अब एक दिन का भी मुलाहिजा न करूँगा। गेहूँ नहीं दे सकते तो दस्तावेज लिख दो।

शंकर–मुझे तो देना है, चाहे गेंहूँ लो, चाहे दस्तावेज लिखाओ। किस हिसाब से दाम रखोगे?

विप्र – बाजार भाव पाँच सेर का है, तुम्हें सवा पाँच सेर का काट दूँगा।

शंकर–जब दे ही रहा हूँ तो बाजार–भाव काटूँगा, पाव भर छुड़ाकर क्यों, दोषी बनूँ ।

हिसाब लगाया तो गेंहूँ के दाम साठ रुपये हुए। साठ रुपये का दस्तावेज लिखा गया, तीन रुपया सैकड़े सूद। साल भर में न देने पर सूद की दर साढ़े तीन रुपये सैकड़े बारह आने का स्टाम्प, एक रुपया दस्तावेज की तहरीर शंकर को ऊपर से देनी पड़ी।

गाँव भर ने विप्र जी की निन्दा की, लेकिन मुँह पर नहीं। महाजन से सभी को काम पड़ता है, उसके मुँह कौन लगे।

शंकर ने साल भर कठिन तपस्या की। मीयाद के पहले रुपया अदा करने का उसने व्रत–सा कर लिया। दोपहर को पहले भी चूल्हा न जलता था, चबेने पर बसर होती थी, अब वह भी बंद हुआ। केवल लड़के के लिए रात को रोटियाँ रख दी जातीं। पैसे रोज का तम्बाकू पी जाता था। यही एक व्यसन था जिसका वह कभी त्याग न कर सका था। अब व्यसन भी इस कठिन व्रत के भेंट हो गया। उसने चीलम पटक दी, हुक्का तोड़ दिया और तम्बाकू की हाँड़ी चूर–चूर कर डाली। कपड़े पहले ही त्याग की सीमा तक पहुँच चुके थे, अब वह प्रकृति की न्यूनतम रेखाओं में आबद्ध हो गये। शिशिर की अस्थि–वेधक शीत को उसने आग ताप कर काट दिया। इस ध्रुव संकल्प का फल आशा से बढ़ कर निकला। साल के अन्त में उसके पास साठ रुपये जमा हो गये। उसने समझा, पण्डित जी को इतने रुपये दे दूँगा और कहूँगा, महाराज, बाकी रुपये भी जल्द ही आपके सामने हाजिर करूँगा। पन्द्रह रुपये की तो और बात है, क्या पंडित जी इतना भी न मानेंगे? उसने रुपये लिए और ले जाकर पंडित जी के चरण–कमलों पर अर्पण कर दिये । पंडित जी ने विस्मित् होकर पूछा–किसी से उधार लिये क्या?

शंकर – नहीं महाराज, आपके आसीस से अबकी मजूरी अच्छी मिली।

विप्र – लेकिन यह तो साठ रुपये ही हैं।

शंकर – हाँ, महाराज उतने अभी लीजिए बाकी दो–तीन महीने में दूँगा, मुझे उरिन कर दीजिए।

विप्र – उरिन तो तभी होगे जब मेरी कौडी़–कौड़ी चुका दोगे। जाकर मेरे पन्द्रह रुपये और लाओ ।

शंकर – महाराज इतनी दया करो, अब साँझ की रोटियों का भी ठिकाना

नहीं है, गाँव में हूँ तो कभी न कभी दे ही दूँगा।

विप्र – मैं यह रोग नही पालता, न बहुत बातें करना जानता हूँ। अगर पूरे रुपये न मिलेंगे तो आज से साढ़े तीन रुपये सैकड़े का ब्याज लगेगा। अपने रुपये चाहे अपने घर में रखो, चाहे मेरे यहाँ छोड़ जाओ।

शंकर – अच्छा जितना लाया हूँ उतना रख लीजिए। जाता हूँ, कहीं से पन्द्रह रुपये और लाने की फिक्र करता हूँ।

शंकर ने सारा गाँव छान मारा, मगर किसी ने रुपये न दिये, इसलिए नहीं कि उसका विश्वास न था, या किसी के पास रुपया न था, बल्कि इसलिए कि पंडित जी के शिकार को छेड़ने की किसी में हिम्मत न थी।

क्रिया के पश्चात प्रतिक्रिया नैसर्गिक नियम है। शंकर साल भर तक तपस्या करने पर जब ऋण से मुक्त होने में सफल न हो सका तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणित हो गया। उसने समझ लिया कि जब इतना कष्ट सहने पर भी साल भर में साठ रुपये से अधिक जमा न कर सका तो अब और कौन–सा उपाय है जिसके द्वारा उससे दूने रुपये जमा हों। जब सिर पर ऋण का बोझ ही लदना है तो क्या मन का और क्या सवा मन का। उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो गयी। आशा उत्साह की जननी है, आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालक शक्ति है। शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया। वह जरूरतें जिनको उसने साल भर तक टाल रखा था, अब द्वार पर खड़ी होने वाली भिखारिणी न थीं, बल्कि छाती पर सवार होने वाली पिशाचिनियाँ थीं जो अपनी भेंट लिये बिना जान नहीं छोड़तीं। कपडों में चकतियों के लगने की भी एक सीमा होती है। अब शंकर को चिट्ठा मिलता तो वह रुपये जमा न करता। कभी कपड़े लाता, कभी खाने को कोई वस्तु। जहाँ पहले तम्बाकू ही पिया करता था, वहाँ अब गाँजे और चरस का चस्का भी लग गया। उसे अब रुपये अदा करने की कोई चिन्ता न थी मानो उसके ऊपर किसी का पैसा नहीं आता। पहले जूड़ी चढ़ी होती थी, पर वह काम करने अवश्य

जाता था। अब काम पर न जाने के लिए बहाना खोजा करता।

इस भाँति तीन वर्ष निकल गये। विप्रजी महाराज ने एक बार भी तकाजा न किया। वह चतुर शिकारी की भाँति अचूक निशाना लगाना चाहते थे। पहले से शिकार को चौंकाना उनकी नीति के विरुद्ध था।

एक दिन पंडित जी ने शंकर को बुला कर हिसाब दिखाया। साठ रुपये थे जो जमा थे वह मिनहा करने पर शंकर के जिम्मे एक सौ बीस रुपये निकाले।

शंकर – इतने रुपये तो उसी जन्म में दूँगा, इस जन्म में नहीं हो सकते।

विप्र – मैं इसी जन्म में लूँगा। मूल न सही, सूद तो देना ही पड़ेगा।

शंकर – एक बैल है, वह ले लीजिए; एक झोपड़ी है, वह ले लीजिए और मेरे पास क्या रखा है?

विप्र – मुझे बैल–बधिया ले कर क्या करना है। मुझे देने को तुम्हारे पास बहुत कुछ है।

शंकर – और क्या है महाराज?

विप्र – कुछ नहीं है तुम तो हो। आखिर तुम भी कहीं मजूरी करने जाते ही हो। मुझे भी खेती के लिए मजूर रखना पड़ता है। सूद में हमारे यहाँ काम किया करो, जब सुभीता हो मूल दे देना। सच तो यों है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते, जब तक मेरे रुपये नहीं चुका दो। तुम्हारे पास कोई जायदाद नहीं है, इतनी बड़ी गठरी मैं किस एतबार पर छोंड़ दूँ। कौन इसका जिम्मा लेगा कि तुम मुझे महीने–महीने सूद देते जाओगे? और कहीं कमा कर अब तुम मुझे सूद भी नहीं दे सकते, तो मूल की कौन कहे?

विप्र – तुम्हारी घर वाली है, लड़के हैं, क्या वे हाथ पाँव कटा के बैठेंगे। रहा मैं तुम्हें आधा सेर जौ रोज कलेवा के लिए दे दिया करुँगा। ओढ़ने को साल

में एक कम्बल पा जाओगे, एक मिरजई भी बनवा दिया करूँगा, और क्या चाहिए? यह सच है कि और लोग तुम्हें छः आने रोज देते हैं लेकिन मुझे ऐसी गरज नहीं है, मैं तो तुम्हें अपने रुपये भराने के लिए रखता हूँ।

शंकर ने कुछ देर तक गहरी चिंता में पड़े रहने के बाद कहा – महाराज, यह तो जन्म भर की गुलामी हुई।

विप्र – गुलामी समझो, चाहे मजूरी समझो। मैं अपने रुपये भराये बिना तुमको कभी न छोड़ूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा। हाँ, जब कोई न रहेगा तब की दूसरी बात है।

इस निर्णय की कहीं अपील न थी। मजूर की जमानत कौन करता? कहीं शरण न थी, भाग कर कहाँ जाता? दूसरे दिन उसने विप्र जी के यहाँ काम करना शुरु कर दिया। सवा सेर गेंहूँ की बदौलत उम्र भर के लिए गुलामी की बेड़ी पैरों में डालनी पड़ी। उस अभागे को आज अगर किसी विचार से संतोष होता था तो यह था कि यह मेरे पूर्वजन्म का संस्कार है। स्त्री को वे काम करने पड़ते थे, जो उसने कभी न किये थे, बच्चे दानों को तरसते थे, लेकिन शंकर चुपचाप देखने के सिवा और कुछ न कर सकता था। गेंहूँ के दाने किसी देवता के शाप की भाँति आजीवन उसके सिर से न उतरे।

शंकर ने विप्र जी के यहाँ बीस वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। एक सौ बीस रुपये अभी तक उसके सिर पर सवार थे। पंडित जी ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा। इतने अन्यायी नहीं, इतने निर्दय वे न थे। उसके जवान बेटे की गर्दन पकड़ी। आज तक वह विप्र जी के यहाँ काम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जानें।

***

प्रेमचन्द :–

प्रेमचन्द आधुनिक हिन्दी उपन्यास एवं कथासाहित्य के शिखरपुरुष हैं। प्रेमचन्द का साहित्य 20वीं शताब्दी के भारत के राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का सही अर्थों में दर्पण है। उनका साहित्य गंभीर चिंतन, जीवन के प्रति गहरी आस्था एवं मानवीय मूल्यों का त्रिवेणी संगम है। प्रेमचन्द को यथार्थवादी और आदर्शवादी कहा जाता है मगर वे महान मानवतावादी साहित्यकार हैं, उनकी साहित्य साधना मानवता के प्रति प्रतिबद्ध एवं समर्पित रही है।

प्रेमचन्दजी का जन्म वाराणसी के निकट लमही नामक गाँव में 31 जुलाई 1880 ई. को हुआ। गरीबी में इनका बचपन बीता। इसी गरीबी में उन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा ग्रहण की। प्रेमचन्द ने अध्यापन से अपना जीवन शुरू किया और बाद में स्कूल इंस्पेक्टर का पद पाया। 1916 में उन्होंने नौकरी छोड़कर अपना पूरा समय लेखन कार्य को समर्पित किया।

प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखते थे और बाद में हिन्दी में लिखने लगे। यही कारण है, इनकी भाषा में उर्दू और हिन्दी का मणिकांचन योग देखने को मिलता है। इनकी भाषा अपनी सहजता के कारण एकदम मोहक एवं प्रवाहमयी बन गई है।

प्रेमचन्द न केवल 'उपन्यास सम्राट' हैं अपितु 'कहानी सम्राट' भी हैं। प्रेमचन्द मात्र हिन्दी और भारत के ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य के अमर लेखकों में से हैं। इनकी कई कृतियाँ विश्व की कई भाषाओं में अनूदित होकर सम्मानित हुई हैं। प्रेमचन्द का स्वर्गवास 8 अक्टूबर 1936 को हुआ।

प्रेमचन्द की तीन सौ से भी अधिक कहानियाँ विभिन्न शीर्षकों के अलग-अलग संकलनों में प्रकाशित हुई हैं। 'मानसरोवर' के आठ भागों में एकत्र उन कहानियों को पढ़ सकते हैं।

सेवासदन, कर्मभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गोदान आदि इनके कुछ उपन्यास हैं। 'गोदान' बीसवीं शती के उल्लेखनीय उपन्यासों में से एक है। निबन्धकार के रूप में भी प्रेमचन्द का योगदान कम महत्त्व का नहीं है।

'सवा सेर गेहूँ'

प्रेमचंद के साहित्य में किसान–जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हुआ है। भारत का सबसे बड़ा वर्ग किसान रहा है और प्रेमचंद ने इसी कर्ता धर्ता किसान को अपनी रचनाओं का मुख्य विषय बनाया है।

'सवा सेर गेहूं' प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। उन्होंने इस कहानी में गरीबी और बदहाली की दोहरी मार झेल रहे परतंत्र भारत के गरीब किसान की दयनीय अवस्था का अत्यंत सजीव चित्रण किया है। गाँव का एक भोला भाला किसान शंकर सवा सेर गेहूं उधार लेने के बाद साहूकार द्वारा बुने गये ऋण के जाल में फंस जाता है और फिर आजीवन शोषित होता रहता है। वह भूखे पेट जी–तोड़ मेहनत मजूरी करके साहूकार के कर्ज के 60 रुपये ही चुका पाता है। साहूकार से अनुनय विनय कर ब्याज के 15 रुपये की रकम साल भर में चुकता करने की मोहलत मांगता है। पहले तो साहूकार मोहलत देने से इंकार करते हुए उसे खरी–खोटी सुनाता है और फिर मोहलत दे देता है।

लेकिन गरीबी और बदहाली की मार झेल रहा शंकर अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद रकम नही चुका पाता है। काफी समय तक साहूकार अपनी तरफ से कोई तकादा नहीं करता है। कोई तीन साल बाद एक दिन साहूकार ने शंकर को बुलाकर हिसाब दिखाया और बोले–तुम्हारे जिम्मे एक सौ बीस रुपये निकलते हैं। यह हिसाब कब चुकता करोगे?

शंकर कहता है कि इतने रुपये तो अगले जन्म में ही दूँगा, इस जन्म में तो नहीं हो सकते।

साहूकार ने कहा–मैं तो इसी जन्म में लूंगा। मूल न सही, सूद तो देना ही पड़ेगा।

शंकर ने कहा– मेरे पास एक बैल और झोपड़ी है, आप यह दोनों ले लीजिए। इनके अलावा मेरे पास और क्या रखा है?

इस पर विप्र महाजन कहते हैं कि कुछ नहीं है पर तुम तो हो। आखिर तुम भी कहीं मजूरी करने जाते ही हो और मुझे भी मेरे खेती के काम के लिए मजूर चाहिए। सूद पर हमारे यहाँ काम किया करो और जब सुभीता हो तो मूल चुका देना। तुम्हारे पास कोई जायदाद तो है नहीं, किस भरोसे पर इतनी बड़ी गठरी छोड़ दूँ। और कहीं कमा कर तुम सूद भी नहीं भर सकते तो फिर मूल कैसे चुकाओगे।

कुछ देर चिन्ता में डूबे रहने के बाद शंकर बोला–महाराज, यह तो जन्म भर की गुलामी हुई।

साहूकार ने कहा– गुलामी समझो, चाहे मजूरी समझो। मैं तो अपने रुपये भराये बिना तुमको कभी न छोड़ूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा। इस निर्णय की कहीं अपींल न थी। मजूर की जमानत कौन करता? कहीं शरण न थी, भाग कर कहाँ जाता? दूसरे दिन उसने विप्र जी के यहाँ काम करना शुरु कर दिया। सवा सेर गेंहूँ की बदौलत उम्र भर के लिए गुलामी की बेड़ी पैरों में डालनी पड़ी।

***

2. प्रेमियों की वापसी

– हरिशंकर परसाई

नदी के किनारे बैठकर दोनों ने अन्तिम चिट्ठी लिखी– 'यह दुनिया क्रूर है। प्रेमियों को मिलने नहीं देती। हम इसे छोड़कर उस लोक जा रहे हैं, जहाँ प्रेम के मार्ग में कोई बाधा नहीं है।'

प्रेमेन्द्र ने कहा– 'यह दुनिया बहुत बुरी है न, रंजना?'

रंजना ने समर्थन किय– 'हाँ, बहुत दुष्ट है।'

'इसमें आग क्यों नहीं लगती, रंजना?'

'क्योंकि आग लगाने वाले आत्महत्या कर लेते हैं।'

प्रेमी ज़रा देर कुछ नहीं बोल सका। फिर उसने कहा–'हम अनन्त काल तक उस लोक में सुख भोगेंगे।'

प्रेमिका बोली–'इसका भी क्या ठीक है? वहाँ मेरे चाचा–चाची पहले से हैं। तुम्हारे चाचा भी वहाँ पहुँच गये हैं। वे लोग क्या हमें शादी करने देंगे?'

प्रेमी ने समझाया–'वहाँ कोई बन्धन नहीं है। भगवान खुद कन्यादान करेंगे। बुजुर्गों के बाप भी अपना कुछ नहीं बिगाड़ सकते। लो, चिट्ठी पर दस्तखत करो।'

रंजना ने कहा–'नहीं, पहले तुम।'

प्रेमेन्द्र बोला–'नहीं, पहले तुम। मैं सुसंस्कृत पुरुष हूँ। लेडीज फ़र्स्ट।'

रंजना ने कहा– 'पर मैं नारी हूँ, पुरुष की अनुगामिनी।'

इस बात से सुसंस्कृत पुरुष खुश हो गया और उसने दस्तखत कर दिये। नीचे पुरुष की अनुगामिनी ने दस्तखत कर दिये।

पानी में कूदते वक्त भी विवाद हुआ–

‘नहीं, पहले तुम। मैं सुसंस्कृत पुरुष हूँ। लेडीज फ़र्स्ट!’

‘नहीं, तुम पहले। मैं नारी हूँ–पुरुष की अनुगामिनी।’

सुसंस्कृत पुरुष को इस बार खुशी नहीं हुई। उसने सन्देह से पुरुष की अनुगामिनी की तरफ देखा। उसने भी पलटकर सन्देह से सुसंस्कृत पुरुष की तरफ देखा।

दोनों एक साथ साड़ी से बंधे और कूद पड़े। जार्जेट सार्थक हुई।

रास्ते में रंजना ने प्रेमेन्द्र से कहा– ‘तुम तो मरने के बाद भी दांतों से नाखून काटते हो। बड़ी गन्दी आदत है।’

प्रेमेन्द्र ने कहा– ‘तुम भी तो भैंस की तरह मुँह फाड़कर जम्हाई ले रही हो। मुँह पर हाथ क्यों नहीं रखती। बड़ी गंवार हो।’

रंजना ने विषय बदलना उचित समझा। बोली–‘उधर घर के लोग अपने लिए बहुत रो रहे होंगे।’

प्रेमेन्द्र ने कहा– ‘तुम्हारे माँ–बाप तो खुश होंगे। सोचते होंगे, बला टली। दहेज बचा। तुम्हारी चार बहनें और बैठी हैं न।’

रंजना ने तैश में कहा–‘और तुम्हारी बाप क्या रो रहा होगा? मैं जानती हूँ, वह तुम से कितनी नफ़रत करता है।’ अब प्रेमेन्द्र को विषय बदलना उचित मालूम हुआ। उसने कहा– ‘छोड़ो इन बातों को। इधर घर बसाने की सोचो।’

रंजना ने कहा–‘बड़ी गलती हो गयी। मैंने कॉलेज में हमेशा पाकशास्त्र का पीरियड गोल किया। सीख लेती, तो तुम्हें बढ़िया पकवान बनाकर खिलाती।’

फिर उसे कुछ याद आया, बोली–‘पर कोई बात नहीं। हमारी पाकशास्त्र की प्रोफ़ेसर मिस सूद, पिछले महीने ही वहाँ पहुँची हैं। तुम उन्हें जानती हो न? पाक–शास्त्र बहुत अच्छा पढ़ाती हैं, पर खाना बहुत खराब बनाती हैं। उन्हें

प्रिंसिपल साहिबा के भाई से गर्भ रह गया था। उन्होंने ज़हर खा लिया। बेचारी ने कैरेक्टर रोल अच्छा लिखवाने के लिए वैसा किया था।'

वे उस लोक पहुँच चुके थे। शाम को पार्क में घूम रहे थे कि एक बेंच पर पहचाने–से स्त्री–पुरुष बैठे दिखे। पुरुष नारी का हाथ पकड़े था और नारी पुरुष के कन्धे पर सिर रखे थी।

प्रेमेन्द्र ने ठिठककर कहा–'अरे, ये तो मेरे स्कूल के हेडमास्टर सक्सेना साहब हैं।'

रंजना ने कहा– 'और वह मेरी हेडमास्टरनी मिसेज शर्मा हैं!'

प्रेमेन्द्र ने कहा–'सक्सेना साहब तो बड़े सख्त और अनुशासनप्रिय आदमी थे। हमने उन्हें कभी मुसकराते भी नहीं देखा। हम लोगों को आश्चर्य होता था कि जो आदमी मुसकरा नहीं सकता, उसके बच्चे कैसे होते जाते हैं।'

वे मुड़ने लगे। तभी हेडमास्टर ने पुकारा–'शरमाओ मत, बच्चों ! इधर आओ।'

वे उनके पास चले गये। मिसेज शर्मा ने अपनी विद्यार्थिनी को पहचान लिया। थोड़ी देर औपचारिक बातचीत होती रही। फिर वे अपने–अपने विद्यार्थी से पार्क में घूमते हुए बातें करने लगे।

हेडमास्टर ने कहा–'प्रेमेन, तुम परेशान हो रहे हो कि मुझ जैसा कठोर, संयमी और सदाचारी आदमी मिसेज शर्मा से प्रेम कैसे करने लगा। बात ऐसी हुई कि दो साल पहले एजूकेशन बोर्ड के दफ्तर में हम दोनों मैट्रिक की परीक्षा के नम्बरों का टोटल कर रहे थे। तभी हमारा भी टोटल हो गया। तीन महीने पहले मिसेज शर्मा की निमोनिया से मौत हो गयी। और एक हफ्ता पहले मैं भी हार्टफ़ेल से यहाँ आ गया। मैंने इससे कह दिया है कि तुम्हारे विरह में आत्महत्या कर ली। तुम उसे बता मत देना कि मैं हार्टफ़ेल होने से मरा।'

उधर मिसेज शर्मा ने रंजना से कहा–'मैं तो इस हेडमास्टर का घमण्ड

तोड़ना चाहती थी। यह बड़ा कठोर और सदाचारी बनता था। राष्ट्रपति से तमगा ले आया था। पर जब मैंने इसे तोड़ा, तो तमग़ा बेचकर मेरे चक्कर लगाने लगा। झूठ बोलना इसने यहाँ भी नहीं छोड़ा। मरा हार्टफ़ेल होने से और कहता है कि मैंने तुम्हारे लिए आत्महत्या कर ली। देख, तुझे जो करना हो, जल्दी कर लेना। पुरुष का कोई भरोसा नहीं। यह हेडमास्टर चोरी–चोरी अपनी साली की तलाश करता रहता है।'

उधर हेडमास्टर ने प्रेमेन्द्र से कहा–'इस लड़की का कोई पूर्व प्रेमी तो यहाँ नहीं है? ज़रा सावधान रहना। कुछ भरोसा नहीं। यह हेडमास्टरनी चुपके–चुपके अपने स्कूल के संगीत मास्टर का पता लगाती रहती है।'

वे अपने गुरुओं से दीक्षा लेकर आगे बढ़े, तो देखा, प्रेमेन्द्र के चाचा साहब अपने साहब की बीवी के हाथ में हाथ डाले घूम रहे हैं। उसे झटका लगा। चाचा के बारे में वह ऐसी कल्पना नहीं कर सकता था। चाचा ने उसे देख लिया। बोले–'शरमाओ मत। यहाँ हम सब मुक्त हैं। मेम साहब से हमारा उधर से ही चल रहा था।'

प्रेमेन्द्र ने कहा–'मगर चाचा, आप तो कहा करते थे, मेमसाहब बड़ी फ्लर्ट (कुलटा) औरत है।'

चाचा ने कहा–'सो तो हम उसकी तारीफ़ में कहते थे। अरे, पतिव्रता होती, तो हमारे किस काम आती? फ्लर्ट है, तभी तो हमें फ़ायदा पहुँचाती रही है।'

अब प्रेमेन्द्र को विश्वास हो गया कि जिनसे डरत थे, वे सब नियम–बन्धन यहाँ नहीं हैं।

वह रंजना से शादी करने के लिए कहता और वह टालती जाती।

एक दिन उसने कहा–'मैं सब जान गया हूँ। तुम छिपकर उस विनोद से मिलती हो। वह, जो कार–दुर्घटना में मर गया था। वह हेडमास्टरनी तुम्हें उससे मिलवाती है। तुम भूल गयीं कि वह वही विनोद है, जिसके बाप ने

तुम्हारे बाबूजी को सस्पेण्ड करवाया था।'

रंजना ने कहा–'तुम्हें भ्रम है। मैं उससे नहीं मिलती।'

'तुम उससे कहीं प्रेम मत करने लगना।'

'मैं भला उस बदमाश से प्रेम करूँगी?'

'तुम उसे प्रेम करने ही लगी हो। मुझे विश्वास हो गया।'

'आखिर क्यों तुम ऐसा सोचते हो? कैसे कहते हो कि मैं उससे प्रेम करती हूँ?'

'इसलिए कि तुमने उसे अभी 'बदमाश' कहा। प्रेम न करतीं, तो उसे बदमाश नहीं कहतीं।'

रंजना ने छिपाना जरूरी नहीं समझा। उसे बतला दिया कि मैं विनोद से विवाह करने वाली हूँ।

प्रेमेन्द्र ने रोना चाहा, पर उस लोक में आँसू नहीं निकलते। उसने उसे भला–बुरा कहा और आत्महत्या की धमकी देकर चला गया।

पर आत्महत्या वह कर नहीं सका। उसने फाँसी लगाने की कोशिश की, गरदन कसी ही नहीं। रेल के नीचे लेट गया, पर पूरी गाड़ी निकल गयी और उसे चोट तक नहीं आयी। वह नदी में कूदा, पर उतराता रहा। एक दिन वह इमारत की पांचवीं मंज़िल से कूद पड़ा। नीचे सड़क पर एक पुलिस वाले के ऊपर गिरा। पुलिस वाले ने हंसकर कहा–'क्या बच्चों का खेल खेलते हो।'

प्रेमेन्द्र ने कहा–'मैं पांचवीं मंज़िल से कूदा हूँ और तुम इसे बच्चों का खेल कहते हो।'

उसने जवाब दिया–'तो क्या हुआ? तुम यहाँ सौवीं मंज़िल से भी कूद सकते हो। पर तुम आखिर कूदे क्यों?'

प्रेमेन्द्र ने कहा–'मैं आत्महत्या करना चाहता हूँ।'

पुलिस वाले ने कहा–‘पर आत्महत्या तो यहाँ हो नहीं सकती। हो जाए, तो जीव यहाँ से कहाँ जाए? तुम्हारे उधर के कवि तक यह जानते हैं। किसी ने कहा है न–मर के भी चैन न पाया तो किधर जाएंगे।’

प्रेमेन्द्र ने कहा–‘तो हत्या तो हो सकती होगी। मैं उस हेडमास्टरनी की हत्या करना चाहता हूँ।’

पुलिसमैन ने कहा–‘तुम्हारे पुराने संस्कार छूटे नहीं हैं, तभी तो हत्या के लिए पुलिस से सलाह मांगते हो। देखो, हत्या भी नहीं हो सकती। वही समस्या है कि जीव कहाँ जाए। बात क्या है? कुछ प्रेम वगैरह का मामला है क्या?’

प्रेमेन्द्र ने कहा–‘हाँ, वह मुझे धोखा दे गयी।’

पुलिसमैन ने कहा–‘तो तुम प्रेम और विवाह विभाग के संचालक से मिलो। वे मामला सुलझायेंगे।’

प्रेमेन्द्र संचालक के दफ्तर में गया। । उन्होंने उसे सिर से पांव तक देखा और खूब मुसकान लाकर पूछा–‘यस यंग मैन, व्हाट कनाई डू फ़ॉ’ यू?’ (मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?)

प्रेमेन्द्र ने कहा–‘साहब भारत से आये मालूम होते हैं।’

साहब ने पूछा–‘तुमने कैसे जाना?’

प्रेमेन्द्र ने कहा–‘ऐसे कि आप यहाँ भी अंग्रेजी में बोल रहे हैं। यह ऊँचे दरजे के भारतीय का लक्षण है।’

साहब ने कहा–‘तुम ठीक कहते हो। अंग्रेजी के लिए ही मैंने वह गिरा हुआ देश छोड़ दिया। मैं आई.सी.एस. था। दिल्ली में एक विभाग का सेक्रेटरी था। 26 जनवरी, 1955 को जब हिन्दी उस देश की शासन की भाषा हो गयी, तो 27 को मैं हवाई जहाज से लन्दन पहुँचा और थेम्स नदी में कूद पड़ा।’

प्रेमेन्द्र ने कहा–'सर, आप इतनी दूर क्यों गये? वहीं दिल्ली में यमुना में कूद कर मर सकते थे।'

साहब ने कहा–'नॉनसेन्स ! कैसी बात करते हो। जमुना में कूदता, तो हर मेजस्टी (इंग्लैण्ड की रानी) मेरे बारे में क्या सोचती?'

प्रेमेन्द्र ने उन्हें अपनी समस्या बतायी। संचालक ने कहा–'यह पॉलिसी का मामला है। ऊपर से तय होगा। पॉलिसी तय कर लो, तो अमल में जैसा कहोगे, वैसा उसे घुमा दूंगा। ठीक उस पॉलिसी से उलटा उसी पॉलिसी के अन्तर्गत कर सकता हूँ। मुझे दिल्ली में इसका अभ्यास हो चुका है। मैं तुम्हारा केस विधाता के पास भेज देता हूँ। तुम उनसे कल मिल लो।'

दूसरे दिन प्रेमेन्द्र विधाता के सामने हाज़िर हुआ। रंजना भी बुला ली गयी थी। विधाता ने कहा–'तुम्हारा मामला हमने देख लिया। तुम क्या चाहते हो?'

प्रेमेन्द्र ने कहा–'अगर आप इसे सीरियसली लें, तो मैं आपको 'प्रभु' कहूँ–प्रभु , आप रंजना का मुझसे प्रेम करने का हुक्म दें और इस बदज़ात हेडमास्टरनी को डिसमिस कर दें।'

विधाता ने कहा–'जहाँ तक प्रेम का सम्बन्ध है, हमारे हाथ संविधान से बंधे हैं। प्रेम पब्लिक सेक्टर में नहीं है, प्राइवेट सेक्टर में है। वह हेडमास्टरनी भी हमारी नौकरी में नहीं है। हम दूसरा पक्ष सुनकर समझौता कराने का प्रयत्न कर सकते हैं। देवी रंजना, तुम्हें इस सम्बन्ध में क्या कहना है?'

रंजना ने निवेदन किया–'प्रभु, हमारी दुनिया में हमें स्वतन्त्रता नहीं है, इसलिए जो हमारे सम्पर्क में आ जाता है, उसी से हमें प्रेम करना पड़ता है। यह प्रेमेन्द्र हमारे घर में बचपन से आता रहा है। पिताजी इससे पान–सिगरेट मंगवाते थे। मेरे माता–पिता इतने सख्त हैं कि न मुझे अकेली जाने देते थे, न किसी आदमी को घर में आने देते थे। मैं प्रेमेन्द्र के सिवा किसी दूसरे पुरुष को जानती भी नहीं थी। इसी मज़बूरी में जो हमारा सम्बन्ध

हुआ, उसे हम प्रेम कहने लगे। मेरा वश चलता, तो मैं विनोद से प्रेम करती। मुझे वह पसन्द था। पर उसके पिता ने हमारे बाबूजी को सस्पेण्ड करवा दिया था। इसलिए उसका हमारे यहाँ आना नहीं होता था। पर यहाँ स्वतंत्रता है। मैं अपनी इच्छा से प्रेम कर सकती हूँ। इसलिए विनोद से प्रेम करती हूँ। परतन्त्रता में जो हो गया, वह स्वतन्त्रता में नियामक नहीं हो सकता।'

विधाता ने प्रेमेन्द्र से कहा–'सुना तुमने? तुम क्या कहते हो?'

प्रेमेन्द्र ने दु:खी प्रेमी के आधिकारिक रोष से कहा–'यही कहना है कि हमें ऐसी जगह नहीं रहना। हमें वापस हमारे संसार में भेज दिया जाए। इधर का भरोसा झूठा निकला।'

विधाता ने कहा–'तुम वहाँ से यहाँ और यहाँ से वहाँ भागते फिरोगे या कुछ करोगे भी?'

तब तक सचिव ने रेकार्ड देखकर बताया–'प्रभु, इस लड़की की माता का कोटा खत्म हो गया। पाँच लड़कियाँ देनी थीं, सो दे चुके। अब यह उसी परिवार में जन्म नहीं ले सकती। लड़के के बाप का अलबत्ता एक बेटा बकाया है।'

प्रेमेन्द्र ने गुस्से से कहा–'अजीब धांधली है! यहाँ भी अपना बाप हम नहीं चुन सकते। एक लड़की किसी को दे देने में क्या लड़कियों का यहाँ स्टॉक खत्म हो जायेगा?'

विधाता ने उसे नाराज़गी से देखा। बोले–'तुम्हें गुस्सा जल्दी आ जाता है, प्रेमी महोदय! तुम इतनी जल्दी दुनिया क्यों छोड़ आये। किसी दुर्घटना में मारे गये थे क्या?'

प्रेमेन्द्र ने कहा–'मैं प्रेम के कारण आत्महत्या करके आया हूँ। हम दोनों एक साथ नदी में कूद पड़े। वहाँ दुनिया वाले हमारी शादी नहीं होने दे रहे थे।'

विधाता ने कहा–'मगर तुम बातें ऐसे तैश में करते हो, जैसे किसी

आन्दोलन में शहीद होकर आये हो। दुनिया में कोई और काम करने को नहीं बचे थे जो यहां चले आये?'

वे दोनों एक–दूसरे की तरफ़ देखने लगे।

विधाता ने रंजना से कहा–'देवी जी, आपका नया प्रेमी जब सुनेगा कि आप इनके प्रेम में आत्महत्या करके आयी हैं, तो वह भी आपको छोड़ देगा। यहाँ सुन्दरियों की कमी नहीं है।'

रंजना ने कहा–'साहब, यह जगह हमें बिल्कुल पसन्द नहीं आयी। यहाँ कुछ निश्चित नहीं है। इधर की स्वतन्त्रता बरदाश्त नहीं हो सकती। कोई किसी के प्रति सच्चा नहीं होता। आप तो हम लोगों को वापस हमारी दुनिया में भेज दीजिए। कहीं भी भेज दीजिए।'

विधाता ने कहा–'पर अब एक कठिनाई है। जो प्रेम में आत्महत्या करके आते हैं, उन्हें फिर मनुष्य बनाने का नियम नहीं है। जिस कारण से उन्हें जीना चाहिए, उस कारण से वे मर जाते हैं। उनमें मनुष्य के रूप में प्रेम करने के योग्य साहस और विवेक की कमी होती है। तुम्हारे लिए भी यह अच्छा नहीं है कि तुम फिर मनुष्य बनो। एक बार बनकर और प्रेम करके तुमने देख लिया। तुम से बना नहीं। तुम में हिम्मत ही नहीं प्रेम को निबाहने की। तुम दुबारा इस झंझट में मत पड़ो। कोई और जीवधारी बनो, जो मनुष्य की तरह प्रेम करने को बाध्य नहीं है। बोलो, कौन जानवर बनना चाहते हो?'

प्रेमेन्द्र ने रंजना से कहा–'बता, क्या बनेगी!'

उसने प्रेमेन्द्र से कहा–'तुम्हीं बताओ पहले।'

प्रेमेन्द्र ने कहा–'नहीं, पहले तुम। मैं सुसंस्कृत आदमी हूँ। लेडीज़ फ़र्स्ट!'

रंजना ने कहा–'नहीं, तुम पहले बताओ। मैं स्त्री हूँ, पुरुष की अनुगामिनी!'

***

हरिशंकर परसाई : –

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी में 22 अगस्त 1942 को हुआ था। इन्होंने स्नातक तक की पढ़ाई यहीं से पूरी की और फिर एम.ए करने के लिए नागपुर विश्वविद्यालय गए। 18 वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने वन विभाग में नौकरी करनी शुरु कर दी। इसके साथ ही 1942 में मॉडल हाई स्कूल में अध्यापन का भी कार्य करने लगे थे। कुछ समय बाद नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन कार्य करने लग गए।

परसाई जी हिन्दी के पहले लेखक हैं, जिन्होंने व्यंग्य को हिन्दी की एक विधा का दर्जा दिलाया और उसे मनोरंजन की परम्परागत परिधि से निकालकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। उनकी व्यंग्य रचनायें पाठकों के मन में केवल गुदगुदी ही पैदा नहीं करती, बल्कि उन्हें उन सामाजिक वास्तविकताओं के सामने खड़ा करती हैं जिनसे उनका अलग रह पाना असंभव है। लगातार खोखली होती जा रही हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में पिसते मध्यवर्गीय मन की सच्चाइयों को हरिशंकर परसाई ने बहुत ही निकटता से परखा है। इसलिए वे हिन्दी साहित्य जगत में महान व्यंग्यकार के रूप में विख्यात हैं

हरिशंकर परसाई जी ने अपनी रचना की भाषा शैली को कुछ इस तरह से प्रयोग किया है कि इनकी किसी भी रचना को पढ़ने वाला व्यक्ति उस स्थिति को भलीभांति महसूस कर सकता है। जैसे कि उस व्यंग्य को लिखने वाला उसके सामने बैठकर उस कहानी को प्रस्तुत कर रहा है। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और शोषण पर करारा व्यंग्य किया है, जो हिन्दी व्यंग्य साहित्य में अनूठा है। वे अपने लेखन को एक सामाजिक कर्म के रूप में परिभाषित करते हैं और उनका समूचा साहित्य वर्तमान से मुठभेड़ करता हुआ दिखाई देता है।

इनकी मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :– 'हँसते हैं रोते हैं',

'भोलाराम का जीव', (कहानी), 'रानी नागफनी की कहानी' (उपन्यास), 'तिरछी रेखाएँ' (संस्मरण), 'भूत के पाँव पीछे', 'माटी कहे कुम्हार से', 'सदाचार का तावीज़', 'विकलांग श्रद्धा का दौर' आदि निबन्ध संग्रह हैं।

'विकलांग श्रद्धा का दौर' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया।

शुक्लोत्तर युग के हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ व्यंग्यकार श्री हरिशंकर परसाई जी का निधन 10 अगस्त 1995 को हुआ।

प्रेमियों की वापसी :

इस रचना में दो प्रेमी आत्महत्या करते हैं यह सोचकर कि यह दुनिया अत्यंत क्रूर है और प्रेमियों का मिलन नहीं होने देती है। पर जब वे दूसरे लोक में पहुँचते हैं तो उन्हें वह लोक भी पसंद नहीं आता। उन्हें लगता है कि इस लोक में स्वतंत्रता कुछ ज्यादा ही है और कोई किसी के प्रति सच्चा नहीं है तो वे वापस पृथ्वी पर आना चाहते हैं। पर विधाता का यह निर्णय होता है कि जो आत्महत्या करके आते हैं उन्हें पुन: मनुष्य बनाने का नियम नहीं है। इसलिए वे मानव के रूप में नहीं बल्कि जानवर के रूम में जन्म ले सकते हैं। यह गद्य इसी की हास्य प्रस्तुति है।

***

3. 'तीसरी कसम' के सेट पर तीन दिन

– फणीश्वरनाथ 'रेणु'

पूरे चालीस घंटे की लंबी और ऊबभरी यात्रा का अंत डेढ़ बजे दिन में दादर स्टेशन पर हुआ। प्लेटफार्म पर पैर रखते ही सूचना मिली कि 'तीसरी कसम' की शूटिंग कमाल स्टूडियो में 'चालू' है और प्रोड्यूसर तथा डायरेक्टर साहब ने कहा कि तनिक विश्राम करके मैं भी तीन बजे तक स्टूडियो पहुँच जाऊँ, तो अच्छा... !

कमाल स्टूडियो के तीन नंबर फ्लोर के फाटक पर मैं ठीक तीन बजे दिन में हाजिर था और 'तीसरी कसम' के डायरेक्टर नंबर तीन, श्रीमान बाबूराम 'इशारा' ने पहली निगाह में मुझे पहचानने से साफ इंकार कर दिया। मूक अभिवादन–भरी मेरी मुस्कुराहट पर उनकी मुख–मुद्रा और गंभीर हो गई, 'शूटिंग देखना मांगता है यह आदमी !' बाद में गले से लिपटकर बोले, 'दादा, आप तो एकदम मेकअप बदलकर आए हैं...!' (रेणु ने अब बाल लंबे रख लिए हैं, पिछली बार जब वे बंबई पधारे थे तब ऐसे नहीं थे।–सं.) स्टूडियो के अंदर कदम रखते ही डायरेक्टर (यंग !) बासु भट्टाचार्य का उच्च ग्राम में बँधा हुआ स्वर सुनाई पड़ा, 'शैलेंद्र !... उधर देखो–तुम्हारा गेस्ट !'

हाँ, बासु भट्टाचार्य ही नहीं–'इमेज मेकर्स' के प्राय: सभी लोग मुझसे नाराज, दुखी और रूठे हुए थे आधी तस्वीर बन चुकी है और अभी तक 'राइटर साहब' ने एक बार भी...!

मुझे भी इस बात का कम दुख नहीं था कि मैंने अभी तक अपनी तस्वीर की शूटिंग नहीं देखी। अपनी ही क्यों, किसी की, किसी की शूटिंग मैंने अभी तक नहीं देखी!

गीतकार शैलेंद्र जब मुस्कुराता है तो प्यार–भरे गीत का कोई मुखड़ा गूँज उठता है।... कौन कहता है कि हम पूरे ढाई साल के बाद मिले हैं?

एक और नौटंकी (दि ग्रेट भारत नौटंकी कंपनी) का सेट लगा हुआ और स्टेज के पीछे करीब आधा दर्जन तंबू तो, 'लोकेशन' देख आने का यह शुभ परिणाम है। हू–ब–हू वैसा ही स्टेज, जैसा पूर्णिया के गुलाबबाग मेले में–प्रोड्यूसर, डायरेक्टर, कैमरामैन और असिस्टेंट्स देख आए हैं।

दूसरी ओर, गाड़ीवान, पट्टी के एक किनारे एक 'टप्पर' गाड़ी खुली पड़ी है। गाड़ी के पास गोबर, गोमूत्र के कीचड़ में घुटना टेककर, भक्ति–भाव से गाड़ी की 'बल्ली' पर एक अभिनेता अपने हृदय की श्रद्धा बिछाए जा रहा है। डॉयलॉग और एक्शन का रिहर्सल कर रहा है, पलटदास?

तो यह उस समय की बात है जब 'जनाना जात और रातवाली बात' सोचकर एक्शन हिरामन ने पलटदास को चेतावनी देकर भेजा था। 'लेकिन तुम वहाँ अपना भजन मत शुरू कर देना!'

लेकिन टप्परगाड़ी के अंदर तो सिर्फ एक तकिया चादर में लिपटा हुआ है और यह पलटदास उस तकिए को ही भक्ति–गद्गद स्वर में कह रहा है : 'ए सीता मैया !... सिया–सुकुमारी...?'

कैमरामैन सुब्रतबाबू भ्रू–कुंचित करके एक ओर असंतुष्ट और तटस्थ खड़े थे, 'मेला में हम जैसा फॉगी–ईवनिंग (कुहरा–गरी संध्या) देखा है वैसा इफेक्ट कहाँ...?'

तीनों डायरेक्टर एक साथ चिल्ला उठे, 'ए ! चालू करो धूप !... लोहबान डालो !... गुग्गुल !! डालो'

तुरंत सुब्रत मित्रा के 'मन के माफिक' कुहरा भरी साँझ (पवित्र सुगंधमयी संध्या) घिर आई– गाड़ीवान पट्टी के उस कोने पर। ऐसे वातावरण में पीछे से एक भद्र महिला एक सिलेटी रंग की फूलदार साड़ी में–झुकी निहुरी (भले घर की बहू–बेटी जैसी! प्रकट हुई !... बासु भट्टाचार्य सेट पर ही तनिक अधिक जोर देकर बोलते हैं। और खास–खास मौके पर उनकी बात दुधारी मार करती है। बोले,'देखुन राइटर साहब ! आपनार हीराबाई।'

('देखून हीराबाई ! आपनार राइटर साहब!')

हीराबाई टप्पर के अंदर जाकर बैठ गई। गाड़ीवान की 'आसनी' पर उसके दोनों पैर ! पैरों में चाँदी के पाजेब, उँगलियों में चाँदी के छल्ले!... मुझे, न जाने क्यों 'किसी प्रिय कवि' की किसी कविता की एक पंक्ति, बार–बार याद आने लगी : 'ये शरद के चाँद से उजले धुले–से पाँव...'

उधर, पलटदास इन चरणों की सेवा करने को आतुर ! डायरेक्टर साहब पैरों के पोज के लिए परेशान, कैमरामैन 'फ्रेम और पोजीशन' ठीक करने में व्यस्त और असिस्टेंट कांटीन्यूटी खोज रहे थे। और, मेरे पास बैठा हुआ गीतकार–प्रोड्यूसर शैलेंद्र, दूर से ही पैरों के रिद्‌म की बात सोच रहा था।... पौन घंटे के बाद सभी एक साथ संतुष्ट हुए और तब 'संवाद' और अभिनय का रिहर्सल शुरू हुआ।

'क्या है? बोलो... हाँ–हाँ–कहो... अरे, क्या? बाजा बजाना चाहता है?'

'जी... चरणसेवा... आप सिया सुकुमारी... मैं सेवक!'

हीराबाई तमककर पैर छुड़ाती है, 'अरे, भाग !... भाग जा यहाँ से।' पलटदास देखता है... सिया सुकुमारी की आँखों में चिनगारी? वह भागता है। हीराबाई मुस्कुराकर बुदबुदाती है, 'पागल!'

'ठीक है। रेडी फॉर टेक...।'

किंतु, सुब्रत बाबू किसी कारणवश जरा 'विब्रत' हैं, 'ऐंगिल तो ठीक है लेकिन?... अच्छा ठीक है! पलटदास का 'पीछू' में माने 'पेंदी' में एक छै इंची का देना पड़ेगा।'

तीनों डायरेक्टर चिल्लाए, 'लगाओ छै इंची!... यह छै इंची क्या है राम? देखा, लकड़ी का एक पीढ़ा पलटदास के नीचे डाल दिया गया।'

इसी बीच असिस्टेंट डायरेक्टर बासु चटर्जी ने मेरे पास आकर धीरे–से कहा, 'चलिए, जरा कैमरा के 'व्यू फाइंडर' में आँखे सटाकर देखिए, तब

पता चलेगा कि गाड़ी में कैसा 'चंपा का फूल' ...!'

बासु चटर्जी असिस्टेंट डायरेक्टर के अलावा बंबई का एक मशहूर 'कार्टूनिस्ट' है, जो हर सप्ताह अपनी बाँकी निगाह से दुनिया को देखता है और दिखलाता है। इसलिए उसकी किसी बात पर पहली बार गंभीरतापूर्वक मैं कभी ध्यान नहीं देता। मैंने कहा, 'नहीं चटर्जी मोशाय ! मैंने जिस चश्मे से हीराबाई को देखा है, देख रहा हूँ।'

तब चटर्जी मोशाय को यह कहना पड़ता है, मैं 'सीरियसली' कह रहा हूँ। चलून ना..., एक बार देखून तो।

एक बात कह दूँ, मैं सुब्रत बाबू के कैमरे को सुब्रत बाबू की देह से भिन्न नहीं– उनका सजीव अंग मानता हूँ। मेरे दिल में इस व्यक्ति (कैमरा सहित) के लिए असीम श्रद्धा है। मुझे याद है, आज से तीन वर्ष पहले जब आउट डोर के लिए 'लोकेशन' देखने और गुलाबबाग मेले की शूटिंग के लिए 'तीसरी कसम' की यूनिट पूर्णिया गई थी...'पंथेर पांचाली', 'जलसाघर', 'अपराजितो', 'अपूर संसार' को सेल्यूलाईड पर अंकित करने वाले व्यक्ति (और मशीन) को निकट से देखने का सुअवसर मिला था। हम करीब एक सप्ताह एक साथ रहे थे। वे मेरे गाँव–मेरे घर में कई दिन ठहरे ही नहीं थे–मेरी हवेली के अंदर (कथांचल के लोगों को चलने फिरने, बोलने–बतियाने के ढंग को चित्रबद्ध करने के लिए!) परिवार की महिलाओं का 'चलचित्र' लिया था। तीन दर्जन बैलगाड़ियों की दौड़ आम के बाग की ढलती हुई छाया... सिंदूरी–सांझ की पृष्ठभूमि में उड़ते हुए बगुलों की पाँतियाँ... इन सारे दृश्यों को 'ग्रहण' करते समय सुब्रत बाबू के चेहरे पर एक अद्भुत चमक खिल जाती थी।...

इसके बावजूद, मैं उनकी आज्ञा के बिना उनके कैमरे को छूने का साहस नहीं कर सकता।... सुब्रत बाबू मुस्कुराए (बहुत बड़ी बात है!) और मैंने आँख सटाकर देखा और देखकर उसी तरह भड़का जैसे टप्परगाड़ी में झांककर पलटदास भड़का था : 'अरे, आप !' कंपनी की औरत ? कंपनी का

बाघ? आँखें–बाघ की या औरत की?

व्यू फाइंडर से देखा कि एक जोड़ी घुड़कती हुई आँखें मुझे घूर रही हैं। सिया सुकुमारी की आँखों से चिनगारी निकल रही है?

कई बार कट–कूट करने के बाद अंतिम 'टेक' हुआ। डाइरेक्टर ने 'ओके' बोल दिया। मगर कैमरामैन से जब प्रोड्यूसर साहब ने पूछा तो जवाब मिला, 'कुछ कह नहीं सकता।... ठीक हुआ है शॉट, किंतु हमने आखिरी डॉयलॉग के समय वहीदा जी का चेहरा 'मन का माफिक' नहीं पाया!'

'रिटेक !... ओके!'

मेरे अंदर में किसी ने 'डॉयलॉग' दुहराया : 'इस्स! इतना तेज जेहन? और बोली भी हू–ब–हू फेनूगिलासी?'

कल हीराबाई के नाच का 'पिक्चराइजेशन' होगा स्टेज पर। मैं, टेक–रिटेक एनजी–ओके–ऑल, लाइट–बेबी–पंजा–कटर–एलकटर–नेट–फ्लोरा–जूम और छै इंची जैसे शब्दों को रटता हुआ अपने निवास स्थान पर लौटा।

सामने, स्टेज पर पनघट का सेट लगाया जा रहा है। दोनों ओर विंग्स में आधे दर्जन जलते हुए पेट्रोमैक्स लटक रहे हैं। नृत्य–निर्देशक लच्छू महाराज सपत्नीक स्टेज पर खड़े डायरेक्टर बासु को अंग–प्रत्यंग नचाकर कुछ समझा रहे हैं। और, एक रुपयावाले 'क्लॉस' में एक बेंच पर बैठकर मैं, गीतकार शैलेंद्र के मुँह से गीत की पंक्तियाँ सुन रहा हूँ : हाय गजब कहीं तारा टूटा...!!

आज इस शूटिंग के तीसरे दिन, तीन तारे टूटनेवाले हैं। पहला तारा–अटरिया पर, दूसरा फुलबगिया में तीसरा–बीच बजरिया में!

कलवाली हीराबाई, भले घर की बहू–बेटी जैसे, थकी सिया सुकुमारी–सी हीराबाई कहाँ चली गई?

मुझे फुटबाल के एक मैच की याद आई। मोहन बागान टीम का कैप्टन चुन्नी गोस्वामी तथा उसकी टीम के अन्य खिलाड़ी मैदान में उतरने के पहले अपनी–अपनी देह के हर जोड़ को तोड़–मरोड़ और झकझोर रहे हैं। किंतु मेरी निगाह सिर्फ चुन्नी गोस्वामी पर है। वह खंजन की चाल में कुछ दूर दौड़कर हठात् दाएँ–बाएँ तिरछी चाल चलता है, फिर कमर पर हाथ रखकर लगातार कूद रहा है !

घाघरी और घुँघरू ! चंद्रहार और बाजूबंद और कंगना और नेकबेसर और यह खिलखिलाहट? चुन्नी गोस्वामी खंजन की चाल में कुछ दूर दौड़कर फिर तिरछी चाल चलता है ! मैदान में उतरने के पहले देह के हर जोड़ को तोड़–मरोड़ रहा है। किंतु सबकुछ एक ताल पर हो रहा है। हीराबाई स्टेज पर लापरवाही से चलती है, हँसती है, बतियाती है और हँसते–हँसते लोट–पोट हो जाती है। मेकअप करती है, घुँघरू बाँधती है। और सबकुछ एक लय में बँधा हुआ है।

सीटी बजी। म्यूजिक शुरू हुआ और घुँघरुओं ने गीत के बोल का स्पष्ट उच्चारण कर दिया। लच्छू महाराज के मुँह से बरबस निकल पड़ा 'जीयो! जीयो!!' एक–डेढ़ घंटे के घनघोर रिहर्सल के बाद पहली पंक्ति और नाच के पहले टुकड़े की 'टेकिंग' के लिए क्षणिक विश्राम दिया गया: 'लाइट्स ऑफ !'

तब, हम दोनों भाइयों (कथाकार और गीतकार) ने मिलकर नौटंकी का एक गीत गुनगुनाना शुरू किया :

'अरे तेरी बाँकी अदा पर मैं खुद हूँ फिदा,
तेरी चाहत का दिलबर बयाँ क्या करूँ।
यही ख्वाहिश है कि तू मुझको देखा करे–
और दिलोजान मैं तुझको देखा करूँ।'

किर्रर्र–र–र–किर–किर–घन–घन–घन–घड़ाम।घन–घन–घन–घड़ाम!!

पिछले तीन वर्षों से हम दोनों किसी बात पर जब एक साथ अति प्रसन्न होते हैं तो नौटंकी की इन्हीं पंक्तियों को इसी तरह गाते हैं और एक–दूसरे को कई मिनट दिलोजान देखते रहते हैं, फिर हँसते–हँसते लोट–पोट हो जाते हैं। हाँ, हम सैकड़ों योजन दूर बैठकर अपनी चिट्ठियों में भी इस गीत को गाते हैं!

गीत का मुखड़ा और नृत्य का पहला टुकड़ा सकुशल 'चित्रित' (पिक्चराइज) हुआ ! आश्चर्य ! 'लंच' शब्द के साथ ही इतनी जोर की भूख जग पड़ती है। अथक और सार्थक परिश्रम के बाद भोजन में यों भी बहुत स्वाद मिलता है।

उस दिन लच्छू महाराज के पास जितने नुकीले टुकड़े थे (तीर, तलवार, कटार, खंजर, बल्लम, बर्छी, भाला!!) बासु भट्टाचार्य एक–एक कर माँगता गया और वयोवृद्ध कथक आचार्य ने प्रसन्नचित्त सबकुछ दिया।

मैंने भी माँग की, 'शैलेंद्र भाई ! कोण–त्रिकोण–त्रिभुज तो बहुत लिए गए। किंतु कुछ वृत्त और चक्र भी चाहिए–हिरामन के मन को चर्खी पर चढ़ाने के लिए कुछ 'स्पिनिंग' !'

शैलेंद्रजी को बात भा गई और वे उठकर डायरेक्टर और कैमरामैन से कह आए और तब सुब्रत बाबू ने मेरी ओर जिस मीठी निगाह से देखा, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। उन्होंने सोत्साह पुकारकर कहा, 'क्रेन माँगता है !'

पुरइन के पात की तरह खिली हुई घाँघरियाँ!!

और, उसी दिन सेट पर एक डॉयलॉग सुना, जिसे मैंने नहीं लिखा। रिहर्सल के बाद डायरेक्टर ने कहा, 'टेक!'

वहीदा रहमान ने कहा, 'नो टेक विदाउट टेप!'

रिहर्सल के सिलसिले में घुँघरू बाँधने की जगह छाले पड़ जाते हैं तब 'ल्युको–प्लास्ट' नामक फीते का टुकड़ा काटकर चिपका दिया जाता है।

किंतु, पैरों की गति के 'क्लोजअप' लेने में कैमरामैन को इससे थोड़ी असुविधा होती है। इसलिए बासु बाबू ने कहा, 'नो टेप ! नौटंकी की लड़कियाँ इतनी नाजुक नहीं होतीं।'

'नाजुक न हों, इंसान तो होती हैं,' वहीदा के इस जवाब ने मार्क्सवादी बासु भट्टाचार्य के मुँह पर ताला जड़ दिया।

चाय के समय पूर्णिया से आए मेरे मित्र अरुण भारती ने विशुद्ध मैथिली में पूछा, 'साँझुक की प्रोग्राम अछि?' और मैंने उन्हें शाम को जिस स्थान पर मिलने को कहा, वह बंबई में नहीं, भट्टाबाजार पूर्णिया में है। अरुण अवाक् होकर मुझे कुछ क्षण देखता रहा, तो मुझे होश हुआ कि मैं गुलाबबाग मेला में नहीं–कमाल स्टूडियो में हूँ।

तीसरे दिन लंच के बाद शैलेंद्रजी कहीं चले गए तो मैं अकेला पड़ गया। गीत और नाच की अंतिम कड़ी के कई 'रिटेक' हो चुके थे। मुद्राओं के क्लोज़अप लिए जा रहे थे। स्टिल–कैमरामैन राकेश इधर–उधर घूमकर अपना फ्लैश चमका रहा था। इसी समय मेरे पासवाली खाली कुर्सी पर वहीदा रहमान की 'हेयर ड्रेसर' आकर बैठी। उसकी मुस्कुराहट से लगा, वह मुझसे कुछ पूछना चाहती है।

उसने पूछा, 'एक्सक्यूज़ मी··· यह कहानी आपने लिखी है?'

'जी हाँ !'

'और आप भी इस फिल्म में उतर रहे हैं!'

'नहीं तो?'

'ओ !··· तो, फिर आपने ये बाल क्यों 'उपजाए' हैं? कोई धार्मिक कारण है या··· ?'

'थोड़ा धार्मिक और थोड़ा शौक भी ! गंजा होने के पहले एक बार बालों की बागवानी··· ?'

'नाइस ! कौन–सी क्रीम व्यवहार करते हैं?'

'पिछले तीस साल से कोई तेल या क्रीम कुछ नहीं डाला।'

भद्र महिला अचरज में पड़ गई, 'सिर चकराता नहीं? केश झड़ते नहीं? रंग तो किंतु !'

अंग्रेजी भाषा में दो–चार गज से ज्यादा बात करते मेरा दम फूलने लगता है। इसलिए मौका पाते ही सवालों का सूत्र मैंने अपने हाथ लिया, 'आप स्टूड़ियो की 'हेयर ड्रेसर' हैं?'

'नहीं, सिर्फ (एक्सक्लूसिवली) वहीदा रहमान की।'

'ओ !'

'बेतरतीब होने के बावजूद, आपके बाल सुंदर लगते हैं। खूब घने हैं, नरम भी होंगे।'

('काले भी हैं !' मैं कहना चाहता था।)

मेमसाहब के गंगा–जमुनी केश पर नजर पड़ते ही मैंने बात बदल दी, 'मैं बहुत दिनों से किसी 'हेयर ड्रेसर' की सलाह लेना चाहता था।'

वह हँसकर बोली, 'हेयर ड्रेसिंग के अलावा मैं वेस्टर्न–म्यूजिक कंपोज करती हूँ। मैंने अपना दो कंपोजीशन पर्ल बक को भेजा है। उन्होंने लिखा है, किसी फिल्म में उपयोग करेंगी।'

इस तरह बात केश–प्रसाधन से शुरू होकर पश्चिमी संगीत पर आई, फिर वहीदा रहमान की ओर मुड़ गई। वह बोली, 'मिस्टर राय (सत्यजित) की वहीदा के बारे में क्या राय है, जानते हैं?'

'हाँ, किसी बँगला–सिने–पत्रिका में पढ़ा था। आनेवाले पच्चीस साल में इस कलाकार से फिल्म बनानेवाले कितना और क्या वसूल कर सकते हैं, यह उनकी प्रतिभा और शक्ति !'

उधर स्टेज पर अचानक काम रुक गया। किसी ने किसी से हल्की आवाज में कहा, 'लु । लुक ! व्हाट ए नाइस पेयर।' डायरेक्टर, असिस्टेंट्स, कैमरामैन, आर्टिस्ट्स सभी खामोश हो गए, किंतु हम बातचीत में मशगूल रहे। और उधर स्टिल कैमरामैन राकेश को किसी ने इशारा किया। फ्लैश की चमक पर हमारा ध्यान भंग हुआ और फ्लोर पर बहुत देर तक हँसी और ठहाके और कहकहों का आर्केस्ट्रा बजता रहा।

शाम को लौटते समय मुझे क्या– वर्षों से मेरी छाती पर बैठकर मूँग दलनेवाला हिरामन, लालमोहर, पलटदास और लहसनवाँ– सभी देवदानव एक साथ उतरकर कहीं चले गए। सिर्फ चक्की की घरघराती हुई, घूमती हुई एक रागिनी मेरे मन में मँडरा रही थी। मैंने गीतकार की ओर देखा। उनकी मुखमुद्रा से लगा वह फिर 'तेरी बाँकी अदा पर' शुरू करेंगे। मैंने कहा, 'नहीं भाई, वह बंदिनी का वही गीत !'

गाड़ी घोड़बंदर रोड छोड़कर लिंकिन रोड की ओर मुड़ रही थी। गीतकार गुनगुना रहा था : ''अबकी बरस बाबुल भैया के भेज !''

मेरा 'भैया–मन' दूर अपने गाँव की गलियों की राह ढूँढ़ने लगा। जहाँ मेरी बहनें मिल–जुलकर गा रहीं थीं : 'सुनु मोरी सखिया सावन–भादव केरि उमड़लि नदिया–भैया अइले बहिनी बुलावे लाहे–सुनु सखि या–या–या।'

***

फणीश्वरनाथ रेणु :

हिन्दी साहित्य के महान रचनाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के पूर्णिया ज़िला के 'औराही हिंगना' गांव में हुआ था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। 1950 में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में हिस्सा लिया, जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। 1952–53 के बाद वे लेखन की ओर उन्मुख हुए। उनके इस काल की झलक उनकी कहानी 'तबे एकला चलो रे' में मिलती है। उन्होंने हिन्दी में आंचलिक कथा की नींव रखी। इनकी लेखनी वर्णनात्मक थी, जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से पाया जाता है। अपनी कहानियों और उपन्यासों में इन्होंने आंचलिक जीवन के हर धुन, हर रंग, हर सुंदरता आदि को शब्दों में बांधने की सफल कोशिश की है। ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया है।

रेणु जी को जितनी ख्याति अपने उपन्यास मैला आंचल से मिली, उसकी मिसाल दुर्लभ है। इसके अलावा परती परिकथा, कितने चौराहे आदि उपन्यास हैं। एक आदिम रात्रि की महक, अग्निखोर, आदि कथा संग्रह हैं। नेपाली क्रांति कथा, श्रुत–अश्रुत पूर्वे, वनतुलसी की गंध, आदि रिपोर्ताज हैं, मारे गये गुलफाम, पंचलाइट, तबे एकला चलो रे आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। कथा–साहित्य के अलावा उन्होंने संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज आदि विधाओं में भी लिखा। उनके कुछ संस्मरण भी काफ़ी मशहूर हुए। 'एक आदिम रात्रि की महक' इसका एक सुंदर उदाहरण है। इनकी लेखन–शैली प्रेमचंद से काफ़ी मिलती थी और इन्हें आज़ादी के बाद का प्रेमचंद की संज्ञा भी दी जाती है। अपनी कृतियों में उन्होंने आंचलिक पदों का बहुत प्रयोग किया है।

अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आंचल' के लिए उन्हें पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया। 'मारे गये गुलफाम' पर आधारित एवं बासु भट्टाचार्य

के निर्देशन में बनी फिल्म तीसरी कसम हिन्दी सिनेमा जगत में मील का पत्थर मानी जाती है। पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित इस महान साहित्यकार का निधन 11 अप्रैल 1977 को हुआ।

फणीश्वरनाथ रेणु की प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ :

उपन्यास : मैला आंचल, परती परिकथा, जूलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे, पलटू बाबू रोड

कथा–संग्रह : एक आदिम रात्रि की महक, ठुमरी, अग्निखोर, अच्छे आदमी,

रिपोर्ताज : ऋणजल–धनजल, नेपाली क्रांतिकथा, वनतुलसी की गंध, श्रुत अश्रुत पूर्वे

प्रसिद्ध कहानियाँ : मारे गये गुलफाम (तीसरी कसम), एक आदिम रात्रि की महक, लाल पान की बेगम, पंचलाइट, तबे एकला चलो रे, ठेस, संवदिया।

'तीसरी कसम के सेट पर तीन दिन' : परिचय

फणीश्वरनाथ रेणु की प्रसिद्ध कहानी 'मारे गए गुलफ़ाम' पर आधारित फिल्म 'तीसरी कसम' बासु भट्टाचार्य के निर्देशन में 1966 में बनी। इस रिपोतार्ज में रेणु जी 'तीसरी कसम' के सेट पर बिताए हुए अपने तीन दिन के अनुभवों के बारे में कहते हैं कि जब वे शूटिंग देखने कमाल स्टूडियो, मुम्बई पहुँचे तो वहाँ हूबहू गुलाब बाग मेले का दि ग्रेट भारत नौटंकी कम्पनी के गाँव का माहौल देखकर दंग रह गए। वहाँ उन्हें फिल्म के डायरेक्टर, गीतकार, कैमरामैन, हेयर ड्रेसर आदि से संवाद करने का जो मौका मिला उन्हीं विचारों का विवरण इस रिपोतार्ज में दिया गया है।

***

4. महाभारत की एक सांझ

– भारतभूषण अग्रवाल

पात्र

धृतराष्ट्र
संजय
युधिष्ठर
भीम
दुर्योधन

स्थान

कुरुक्षेत्र के निकट द्वैतवन के जलाशय का किनारा

समय : सांझ

(यह नाटक यहाँ श्रव्य रूप में ही प्रस्तुत किया गया है : जैसा रेडियो द्वारा प्रसार के लिए होता है, पर इसे सहज ही मंच पर दृश्याभिनय के अनुकूल बनाया जा सकता है।)

(सारंगी पर आलाप उठता है)

धृतराष्ट्र : (ठण्डी साँस लेकर) कह नहीं सकता संजय! किसके पापों का यह परिणाम है, किसकी भूल थी जिसका यह भीषण विषफल हमें मिला। ओह ! क्या पुत्र–स्नेह अपराध है, पाप है? क्या मैंने कभी भी.....कभी भी....

संजय : शान्त हो महाराज ! जो हो चुका, उस पर शोक करना व्यर्थ है।

धृतराष्ट्र : (सांस लेकर) फिर क्या हुआ संजय?

संजय : आत्मरक्षा का और कोई उपाय न देखकर महाबली सुयोधन द्वैतवन के सरोवर में घुस गए और उसके जल–स्तम्भ में छिप कर बैठे रहे। पर न जाने कैसे पांडवों को इसकी सूचना मिल गई और वे तत्काल रथ पर चढ़कर वहाँ पहुँच गए....

(रथ की गड़गड़ाहट)

भीम : लीजिए महाराज ! यही है द्वैतवन का सरोवर। वे अहेरी कहते थे कि उन्होंने दुर्योधन को इसी जल में छिपते हुए देखा!

युधिष्ठिर : आओ, हम लोग उसे बाहर निकालने की चेष्टा करें।

(जल की कल–कल ध्वनि)

युधिष्ठर : (पुकारकर) ओ पापी ! अरे ओ कपटी, दुरात्मा दुर्योधन ! क्या स्त्रियों की भाँति यहाँ जल में छिपकर बैठा है! बाहर निकल आ। देख, तेरा काल तुझे ललकार रहा है।

भीम : कोई उत्तर नहीं। (जोर से) दुर्योधन ! दुर्योधन !! अरे, अपने सारे सहयोगियों की हत्या का कलंक अपने माथे पर लगा कर तू कायरों की भांति अपने प्राण बचाता फिरता है। तुझे लज्जा नहीं आती।

युधिष्ठर : लज्जा ! उस पापी को लज्जा !!– भीमसेन ऐसी अनहोनी बात की तुमने कल्पना भी कैसे की? जो

अपने सगे–सम्बन्धियों को गाजर–मूली की भांति कटवा सकता है, जो अपने भाइयों को जीवित जलवा देने में भी नहीं हिचकिचाता, जो अपनी भाभी को भी भरी सभा में अपमानित करने में आनंद ले सकता है, उसका लज्जा से क्या परिचय!

(सव्यंग्य हँसी)

दुर्योधन : (दूर जल में से) हँस लो, हँस लो दुष्टों! जितना जी चाहे, हँस लो। पर न भूलना कि मैं अभी जीवित हूँ, मेरी भुजाओं का बल अभी नष्ट नहीं हुआ है।

युधिष्ठर : (जोर से) अरे नीच अभी तेरा गर्व चूर नहीं हुआ! यदि बल है तो फिर आ न बाहर, और हमको पराजित करके राज्य प्राप्त कर! वहाँ बैठा–बैठा क्या वीरता बघारता है। तू क्या समझता है, हम तेरी थोथी बातों से डर जाएंगे?

दुर्योधन : अपने स्वार्थ के लिए अपने गुरुजनों, बन्धु–बान्धवों का निर्ममता से वध करनेवाले महात्मा पाण्डवों के रक्त की प्यास अभी बुझी नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर युधिष्ठर, सुयोधन कायर नहीं है, वह प्राण रहते तुम्हारी सत्ता स्वीकार नहीं कर सकता!

भीम : तो फिर आ न बाहर और दिखा अपना पराक्रम। जिस कालाग्नि को तूने वर्षों घृत देकर उभारा है, उसकी लपटों में तेरे साथी तो स्वाहा हो गए– उसके घेरे से अब तू क्यों बचना चाहता है? अच्छी तरह समझ ले, यह तेरी आहुति लिए बिना शान्त न होगी।

दुर्योधन : जानता हूँ युधिष्ठर ! भली–भांति जानता हूँ।
किन्तु सोच लो, मैं थककर चूर हो गया हूँ, मेरी सारी सेना तितर–बितर हो गयी है, मेरा कवच फट गया है, मेरे शस्त्रास्त्र चुक गए हैं। मुझे समय दो युधिष्ठर! क्या भूल गए, मैंने तुम्हें तेरह वर्ष का समय दिया था?

युधिष्ठर : (हँसकर) तेरह वर्ष का समय दिया था। दुर्योधन ! तुमने तो हमें वनवास दिया था, यह सोचकर कि तेरह वर्ष वन में रह कर हमारा उत्साह ठंडा पड़ जायेगा, हमारी शक्ति क्षीण हो जाएगी, हमारे सहायक बिखर जायेंगे और तुम अनायास हम पर विजय पा सकोगे। इतनी आत्म–प्रवंचना न करो!

दुर्योधन : युधिष्ठर ! तुम तो धर्मराज कहलाते हो। तुम्हारा दम्भ है कि तुम अधर्म नहीं करते। फिर तुम्हारे रहते, तुम्हारी आँखों के आगे ऐसा अधर्म हो, सोचो तो!

भीम : (हँसी) अच्छा, तो अब तुझे धर्म का स्मरण हुआ। सच है कायर और पराजित ही अंत में धर्म का स्मरण कर लेता है।

युधिष्ठर : अरे पामर ! तेरा धर्म तब कहाँ चला गया था, जब एक निहत्थे बालक को सात–सात महारथियों ने मिलकर मारा था; जब आधा राज्य तो दूर, सुई की नोंक के बराबर भी भूमि देना तुझे अनुचित लगा था। अपने अधर्म से इस पुण्यलोक भारतभूमि में द्वेष की ज्वाला धधकाकर अब तू धर्म की दुहाई देता है। धिक्कार है तेरे ज्ञान को! धिक्कार है तेरी वीरता को!

दुर्योधन : एक निहत्थे, थके हुए व्यक्ति को घेरकर वीरता का उपदेश देना सहज है युधिष्ठर! मुझे खेद है, मैं इसके लिए तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकता। पर मैं सच कहता हूँ तुमसे, इस नर हत्याकांड से मुझे विरक्ति हो गई है। इस रक्त–रंजित सिंहासन पर बैठकर राज्य करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। तुम निश्चिंत से जाओ और राज्य भोगो। सुयोधन तो वन में जाकर भगवद् भक्ति में दिन बिताएगा।

भीम : व्यर्थ है दुर्योधन ! तेरी यह सारी कूटनीति व्यर्थ है! पापों के परिणामों से अब तू किसी भी प्रकार बच नहीं सकता। बाहर निकलकर, युद्ध कर, बस यहीं एक मार्ग है।

दुर्योधन : अप्रस्तुत को मारने से यदि तुम्हें संतोष मिलता है, तो लो मैं बाहर आता हूँ। (जल से निकल कर बाहर आने तक की आवाज़ें) पर मैं पूछता हूँ युधिष्ठर, मेरे प्राणों का नाश कर तुम्हें क्या मिल जाएगा?

युधिष्ठर : अरे पापी यदि प्राणों का इतना मोह था, तो यह फिर महाभारत क्यों मचाया? न्याय को ठोकर मारकर अन्याय का पथ क्यों ग्रहण किया?

दुर्योधन : युधिष्ठर ! मैंने जो कुछ किया, अपनी रक्षा के लिए! मैं जीना चाहता था, शांति और मेल से रहना चाहता था। मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे रहते यह मेरी कामना, यह सामान्य–सी इच्छा भी पूरी न हो सकेगी।

भीम : पाखण्डी ! तुझे झूठ बोलते लज्जा नहीं आती।

दुर्योधन : ले लो राक्षसों ! यदि तुम्हारी हिंसा इसी से तृप्त होती है तो ले लो, मेरे प्राण भी ले लो। जहाँ मैं जीवन भर प्रयास करके भी अपनी एक भी घड़ी शांति से न बिता सका, जब मैं अपनी एक भी कामना को फलते न देख सका, तो अब इन प्राणों को रखकर भी क्या करूँगा! लो उठाओ शस्त्र और उड़ा दो मेरा शीश! अब देखते क्या हो! मैं निहत्था तुम्हारे सम्मुख खड़ा हूँ! ऐसा सुअवसर कब मिलेगा, मेरे जीवन शत्रुओं!

युधिष्ठिर : पहले वीरता का दम्भ और अंत में करुणा की भीख! कायरों का यही नियम है! परंतु दुर्योधन ! कान खोलकर सुन लो! हम तुम्हें दया करके छोड़ेंगे भी नहीं, और तुम्हारी भांति अधर्म से हत्या कर वधिक भी न कहलाएँगे। हम तुम्हें कवच और अस्त्र देंगे। तुम जिस अस्त्र से लड़ना चाहो बता दो। हममें से केवल एक व्यक्ति ही तुम से लड़ेगा। और यदि तुम जीत गए तो सारा राज्य तुम्हारा! कहो, यह धर्म नहीं है? स्वीकार है?

भीम : इस दुराचारी के साथ ऐसा व्यवहार बिलकुल अनावश्यक है।

दुर्योधन : मैं तो कह चुका हूँ युधिष्ठर! मुझे विरक्ति हो गयी है। मेरी समझ में आ गया है कि अब प्राणों की तृप्ति की चेष्टा व्यर्थ है। विफलता के इस मरुस्थल में अब एक बूंद आयेगी भी तो सूखकर खो जाएगी। यदि तुम्हें इसमें संतोष हो कि तुम्हारी महत्वाकांक्षा मेरी मृत देह पर ही अपना जय–स्तंभ उठाए तो फिर यही सही! (साँस लेकर) चलो, यह भी एक प्रकार

से अच्छा ही होगा। जिन्होंने मेरे लिए अपने प्राणों की बलि दी, उन्हें मुंह तो दिखा सकूंगा। (रुककर) अच्छी बात है युधिष्ठर! मुझे, एक गदा दे दो, फिर देखो मेरा पौरुष?

(लघु विराम)

संजय : इस प्रकार महाराज ! पाण्डवों ने विरक्त सुयोधन को युद्ध के लिए विवश किया। पाण्डवों की ओर से भीम गदा लेकर रण में उतरे। दोनों वीरों में घमासान युद्ध होने लगा। सुयोधन का पराक्रम सबको चकित कर देता था। ऐसा लगता था मानो विजयश्री अंत में उन्हीं का वरण करेगी। पर तभी श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने सुयोधन की जंघा में गदा का भीषण प्रहार किया। कुरुराज आहत होकर चीत्कार करते हुए गिर पड़े।

धृतराष्ट्र : हाय पुत्र! इन हत्यारों ने अधर्म से तुम्हें परास्त किया। संजय मेरे इतने उत्कट स्नेह का ऐसा अंत। ओह मैं नहीं सह सकता। मैं नहीं सह सकता....

संजय : धैर्य, महाराज, धैर्य ! कुरुकुल के इस डगमगाते पोत के आप ही कर्णधार हैं।

धृतराष्ट्र : संजय! बहलाने की चेष्टा न करो। (रुककर) पर ठीक कहा तुमने कुरुकुल का कर्णधार ही अन्धा है, उसे दिखाई नहीं देता।

संजय : महाराज! ठीक यही बात सुयोधन ने कही थी।

धृतराष्ट्र : क्या? क्या कहा था सुयोधन ने? कब?

संजय : जब सुयोधन आहत होकर निस्सहाय भूमि पर गिर पड़े,

तो पाण्डव जय–ध्वनि करते और हर्ष मनाते अपने शिविर को लौट गए। संध्या होने पर पहले अश्वत्थामा आए और कुरुराज की यह दशा देखकर बदला लेने का प्रण करते हुए चले गये। फिर युधिष्ठर आये। सुयोधन के पास आकर वे झुके और शांत स्वर में बोले:

युधिष्ठिर : दुर्योधन ! दुर्योधन !! आँखे खोलो भाई।

दुर्योधन : (कराहते हुए) कौन युधिष्ठिर। युधिष्ठिर तुम! तुम क्यों आए हो? क्यों आए हो? अब क्या चाहते हो? तुम राज्य चाहते थे, वह मैंने दे दिया। मेरे प्राण चाहते थे, वे भी मैंने दे दिए। अब क्या लेने आये हो मेरे पास? अब मेरे पास ऐसा कौन–सा धन है जिसके प्रति तुम्हें ईर्ष्या हो? जाओ, जाओ, दूर हो मेरी आँखों से। जीवन में तुमने मुझे चैन नहीं लेने दिया, अब कम से कम मुझे शांति से मर तो लेने दो युधिष्ठिर! जाओ। चले जाओ!!

युधिष्ठिर : तुमने गलत समझा दुर्योधन? मैं कुछ नहीं लेने आया। मैं तो देखने आया था कि...

दुर्योधन : कि अंतिम समय में मैं किस तरह निस्सहाय, निर्बल पशु की भाँति तड़प–तड़पकर अपना दम तोड़ता हूँ?

मेरी मृत्यु का पर्व मनाने आये हो? मेरी आहों का आलाप सुनने आए हो! अरे निर्दयी! तुम्हें किसने धर्मराज की संज्ञा दी! जो सुख से मरने भी नहीं देता, वही धर्म का ढोल पीटे, कैसा अन्याय है।

युधिष्ठिर : अर्थ का अनर्थ न करो दुर्योधन! मैं तो तुम्हें शांति देने

आया था। मैंने सोचा, हो सकता है तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा हो! यदि ऐसा हो तो तुम्हारी व्यथा हल्की कर सकूं, इसी उद्देश्य से मैं आया था।

दुर्योधन : हाय रे मिथ्याभिमानी! अब भी यह दया का ढोंग नहीं छोड़ा? पर युधिष्ठिर! तनिक अपनी ओर तो देखो। पश्चात्ताप तो तुम्हें होना चाहिए! मैं क्यों पश्चात्ताम करूँगा? मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है? मैंने अपने मन के भावों को तुमसे गुप्त नहीं रखा, मैंने षडयन्त्र नहीं किया, मैंने गुरुजनों का वध नहीं किया!

युधिष्ठिर : यह तुम क्या कह रहे हो दुर्योधन?

दुर्योधन : (दांत किटकिटाकर) दुर्योधन नहीं, सुयोधन कहो धर्मराज। क्या अब भी तुम्हारी छाती ठंडी नहीं हुई? क्या मुझे मारकर भी तुम्हें संतोष नहीं हुआ जो मेरी अंतिम घड़ी में मेरे मुँह पर मेरे नाम की खिल्ली उड़ा रहे हो? निर्दयी क्या ईर्ष्या में अपनी मानवता भी भस्म कर दी।

युधिष्ठिर : क्षमा करो भाई! अब तुम्हें और अधिक कष्ट नहीं पहुंचाना चाहता, पर मेरे कहने न कहने से क्या आनेवाली पीढ़ियाँ तुम्हें दुर्योधन के नाम से ही संबोधित करेगी, तुम्हारे कृत्यों का साक्षी इतिहास पुकार-पुकारकर....

दुर्योधन : मुझे दुर्योधन कहेगा, यही न? जानता हूँ युधिष्ठिर! मैं जानता हूँ। मुझे मारकर भी तुम चुप नहीं बैठोगे। तुम विजेता हो, अपने गुरुजनों और सगे-संबंधियों के शोणित की गंगा में नहाकर तुमने राजमुकुट धारण किया है। तुम अपनी देख-रेख में इतिहास

लिखवाओगे और उसका पूरा–पूरा लाभ उठाने से क्यों चूकोगे। सुयोधन को सदा के लिए दुर्योधन बनाकर छोड़ोगे। (कराहकर) उसकी देह को ही नहीं, उसका नाम तक मिटा दोगे। यह अच्छी तरह जानता हूँ। (रुककर) मेरे मरने पर तुम जी चाहे जो करना, मैं तुम्हारे हाथ पकड़ने नहीं आऊँगा। पर इस समय,जब तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु मर रहा है, उसे इतना न्याय दो कि उसका मिथ्या अपमान न करो।

युधिष्ठिर : युधिष्ठिर ने सदा ही न्याय दिया है सुयोधन। न्याय के लिए वह बड़े–बड़े दुःख उठाने से भी नहीं चूका है। सगे–संबंधियों के तड़प–तड़पकर प्राण त्यागने का यह भीषण दृश्य, अबलाओं अनाथों का यह करुण चीत्कार किसी भी हृदय को दहलाने के लिए पर्याप्त था। पर सुयोधन! मैं इन संहार के दृश्यों को भी शांत भाव से सह गया, क्योंकि न्याय के पथ पर जो मिले, सब स्वीकार है।

दुर्योधन : यह दम्भ है युधिष्ठिर! यह मिथ्या अहंकार है। मैं तुम्हारी यह आत्म–प्रशंसा नहीं सुन सकता, इसे तुम अपने भक्तों के लिए रहने दो। तुम विजय की डींग मार रहे हो, पर न्यायधर्म की दुहाई मत दो, स्वार्थ को न्याय का रूप देकर धर्मराज की उपाधि धारण करने में तुम्हें संतोष मिलता है तो मिले, मेरे लिए वह आत्म–प्रवंचना है। मैं उससे घृणा करता हूँ।

युधिष्ठिर : स्वार्थ! दुर्योधन, स्वार्थ!!

दुर्योधन : और नहीं तो क्या? जिस राज्य पर तुम्हारा रत्ती–भर अधिकार नहीं था, उसको पाने के लिए तुमने

युद्ध ठाना, वह स्वार्थ का तांडव–नृत्य नहीं तो और क्या है? भला किस न्याय से तुम राज्याधिकार की मांग करते थे?

युधिष्ठिर : सुयोधन, मन को टटोलकर देखो। क्या वह तुम्हारे कथन का समर्थक है! क्या तुम नहीं जानते कि पिता के राज्य पर पुत्र का अधिकार सर्वसम्मत है? फिर महाराज पाण्डु का राज्य मेरा हुआ या नहीं?

दुर्योधन : अब, तुम्हारे पास एक ही तर्क है न! परंतु युधिष्ठिर, क्या तुमने कभी यह भी सोचा कि जिस राज्य का तुम अधिकार चाहते थे वह तुम्हारे पिता के पास कैसे आया? क्या जन्माधिकार से? नहीं!

तुम्हारे पिता को राज्य की देखभाल का कार्य केवल इसलिए मिला कि मेरे पिता अन्धे थे! राज्य–संचालन में उन्हें असुविधा होती। अन्यथा उस पर तुम्हारे पिता का कोई अधिकार न था, वह मेरे पिता का था।

युधिष्ठिर : यह तो ठीक है। पर एक बार चाहे किसी भी कारण से हो, जब मेरे पिता को राज्य मिल गया, तब उसके पश्चात् उस पर मेरा अधिकार हुआ या नहीं? क्या राज–नियम यह नहीं कहता?

दुर्योधन : राज–नियम की चिंता कब की तुमने? अन्यथा इस बात को समझने में क्या कठिनाई थी कि तुम्हारे पिता के उपरांत राज्य पर मूल अधिकार मेरे पिता का ही था। वह जिसे चाहते, व्यवस्था के लिए सौंप सकते थे।

युधिष्ठिर : यह केवल तुम्हारा निजी मत है। आज तक किसी ने भी इस प्रकार का कोई सन्देह प्रकट नहीं किया। पितामह भीष्म, महात्मा विदुर, कृपाचार्य अथवा स्वयं महाराज धृतराष्ट्र ने भी कभी ऐसी कोई बात नहीं कही।

दुर्योधन : यही तो मुझे दु:ख है युधिष्ठिर, कि तथ्य तक पहुँचने की किसी ने भी चेष्टा नहीं की। एक अन्याय की प्रतिष्ठा के लिए इतना ध्वंस किया गया और सब अन्धों की भांति उसे स्वीकार किया गया, और सब अन्धों की भांति उसे स्वीकार करते गये। सबने मेरा हठ ही देखा, मेरे पक्ष का न्याय किसी ने नहीं देखा। और जानते हो, इसका क्या कारण था?

युधिष्ठिर : क्या?

दुर्योधन : सब तुम्हारे गुणों से प्रभावित थे। सब तुम्हारी वीरता से डरते थे। कायरों की भांति, रक्तपात से बचने के प्रयत्न में न्याय और सत्य का बलिदान कर बैठे। वे यह नहीं समझ पाए कि भय जिसका आधार हो, वह शांति टिकाऊ नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर : गुरुजनों पर तुम व्यर्थ ही कायरता का आरोप लगा रहे हो। यदि मेरे पक्ष में न्याय नहीं होता तो कोई भी मुझको राज्य देने की मांग क्यों करता?

दुर्योधन : तभी तो मैं कहता हूँ युधिष्ठिर, कि स्वार्थ ने तुम्हें अन्धा बना दिया, अन्यथा इतनी छोटी–सी बात क्या तुम्हें दिखाई न पड़ जाती कि जितने धार्मिक और न्यायी व्यक्ति थे, सबने इस युद्ध में मेरा साथ दिया है। यदि न्याय तुम्हारी ओर था तो फिर भीष्म,

द्रोण, कृपा, अश्वत्थामा सब मेरी ओर से क्यों लड़े? क्या वे जान-बूझकर अन्याय का साथ दे रहे थे? यहाँ तक कि कृष्ण जैसे तुम्हारे परम मित्र ने भी मेरी सहायता के लिए अपनी सेना दी। वे चतुर थे, दोनों पक्षों से मैत्री रखना ही उन्होंने अच्छा समझा। ऐसा क्यों हुआ बोलो! इसीलिए न कि न्याय वास्तव में मेरी ओर था?

युधिष्ठिर : सुयोधन! मैं तुम्हें सांत्वना देने आया था, विवाद करने नहीं। मैं तो तुम्हारी पीड़ा बांट लेने आया था। क्योंकि तुम चाहो जो समझो, मेरी इस बात का तुम विश्वास करो कि मैं इस रक्तपात के लिए तैयार न था, यह मेरी कदापि इच्छा नहीं थी।

दुर्योधन : मैं इसका कैसे विश्वास करूँ? क्या तुम्हारे कह देने से ही? पर तुम्हारे वचनों से भी सशक्त स्वर है तुम्हारे कार्यों का, तुम्हारे जीवन की गतिविधि का, और वह पुकार-पुकारकर कह रही है कि युधिष्ठिर शोणित-तर्पण चाहता था। युधिष्ठिर खून की होली खेलने के लिए ही सारे अवसर जुटा रहा था। भविष्य को भी तुम चाहो तो बहका सकते हो युधिष्ठिर! पर सुयोधन को नहीं बहका सकते। क्योंकि उसने अपने बचपन से लेकर अब तक की एक-एक घड़ी तुम्हारी ईर्ष्या के रथ की गड़गड़ाहट सुनते हुए बिताई है, तुम्हारी तैयारियों ने उसे एक रात भी चैन से सोने नहीं दिया।

युधिष्ठिर : सुयोधन! मुझे लगता है, तुम सुध-बुध खो बैठे हो, तुम प्रलाप कर रहे हो। भला ज्ञान में भी कोई

ऐसी असंभाव्य बात कहता है जो पाण्डव तुमसे तिरस्कृत होकर घर–घर भीख माँगते फिरे, जंगलों की धूल छानते फिरे, उनके संबंध में भला कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे इस कथन का विश्वास करेगा।

दुर्योधन : मैं जानता हूँ युधिष्ठिर! कोई विश्वास नहीं करेगा। और करना चाहे तो तुम उसे विश्वास करने न दोगे। पर इससे क्या, सत्य को दबाकर उसे मिथ्या नहीं किया जा सकता। बचपन से जब हम लोगों ने एक साथ शिक्षा पाई, तब से आज तक के सारे चित्र मेरी दृष्टि से हरे हैं। पुरोचर को कपट से मारकर तुम पांचाल गए और वहाँ द्रुपद को अपनी ओर मिलाया। तभी तो तुम्हारा बल बढ़ता देखकर पिताजी ने तुम्हें आधा राज्य दिया।

युधिष्ठिर : मैं तो यही जानता हूँ कि आधे राज्य पर मेरा अधिकार था।

दुर्योधन : सत्य को ढकने का प्रयत्न न करो युधिष्ठिर! उसे निष्पक्ष होकर जांचो। मेरे पाण प्रमाणों की कमी नहीं है। आधा राज्य पाकर भी तुमने चैन न लिया, तुमने अर्जुन को चारों ओर दिग्विजय के लिए भेजा। राजसूय यज्ञ के बहाने तुमने जरासंध और शिशुपाल को समाप्त किया। यहाँ तक कि जुए में खेल–खेल में भी अपनी ईर्ष्या नहीं भूले, और तुमने चट से अपना राज्य दांव पर लगा दिया ताकि यदि तुम जीते तो तुम्हें मेरा राज्य अनायास ही मिल जाए। वनवास उसी महत्वाकांक्षा का परिणाम था, मेरा उसमें

कोई हाथ न था।

युधिष्ठिर : तुमने जिस तरह भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया...

दुर्योधन : मेरा अपमान भी द्रौपदी ने भरी सभा में किया था। तब तुम्हारी यह न्याय–भावना क्या सो रही थी? फिर द्रौपदी को दांव पर लगाकर क्या तुमने उसका सम्मान करने की चेष्टा की थी? जिस समय द्रौपदी सभा में आई, उस समय वह द्रौपदी नहीं थी, वह जुए में जीती हुई दासी थी।

युधिष्ठिर : यह तुम कैसी विचित्र बात कर रहे हो।

दुर्योधन : सत्य को विचित्र मानकर झुठला नहीं सकते युधिष्ठिर! अपने ही कृत्य वनवास पाकर भी उसका दोष मेरे ही माथे मढ़ा गया, और फिर उस वनवास का एक–एक क्षण युद्ध की तैयारी में लगाया। अर्जुन ने तपस्या द्वारा नये–नये शस्त्र प्राप्त किये, विराटराज से मैत्री कर नये संबंध बनाये गये और अवधि पूर्ण होते ही अभिमन्यु के विवाह के बहाने सारे राजाओं को निमंत्रण भेजकर एकत्र किया गया। युधिष्ठिर क्या इस कटु को मिटा सकते हो?

युधिष्ठिर : यदि जो कुछ तुम कह रहे हो वह सत्य है तो सुयोधन, तुम मेरा विश्वास कि तुमने प्रत्येक घटना के उलटे अर्थ लगाए हैं। जो नहीं है उसे तुमने कल्पना के द्वारा देखा है। यह सब मिथ्या है।

दुर्योधन : किन्तु यही बात मैं तुम्हारे लिए कह सकता हूँ युधिष्ठिर! क्योंकि अन्तर्यामी जानते हैं कि मैंने कोई बुरा आचरण

नहीं करना चाहा। मैंने एकमात्र अपनी रक्षा की। जब तक आक्रमण नहीं किया, मैं चुप रहा। जब मैंने देखा कि युद्ध अनिवार्य है,तो फिर मुझे विवश होकर वीरोचित कर्तव्य करना पड़ा।

युधिष्ठिर : अभिमन्यु–वध भी क्या वीरोचित था।

दुर्योधन : एक–एक बात पर कहाँ तक विचार करोगे युधिष्ठिर।! जब भीष्म, द्रोण और कर्ण का वध वीरोचित हो सकता है, तो फिर अभिमन्यु–वध में ऐसी क्या विशेषता थी? और आज भीमसेन ने मुझे जिस प्रकार पराजित किया है, वही क्या वीरोचित कहलाएगा? पर युधिष्ठिर! मेरे पास अब इतना समय नहीं है कि सबकी विवेचना करूँ। मैं तो सबकी सारी बात जानता हूँ कि तुम्हारी महत्वाकांक्षा ही इस नरसंहार का, इस भीषण रक्तपात का मुख्य कारण है। मैं तो एक निस्सहाय, विवश व्यक्ति की भांति केवल जूझ पड़ा हूँ। तुम्हारे चक्रान्त में मेरे लिए यही पुरस्कार निर्धारित किया गया था।

युधिष्ठिर : सुयोधन! तुम्हें भ्रान्ति हो गयी है। तुम सत्य और मिथ्या में भेद करने में असमर्थ हो। तुम्हारे मस्तिष्क की यह दशा सचमुच दयनीय है।

दुर्योधन : बड़े निष्ठुर हो युधिष्ठिर! मरणोन्मुख भाई से दुराव करते तुम्हारा जी नहीं पसीजता! कुछ क्षणों में ही मैं इस लोक की सीमाओं के परे पहुँच जाऊंगा। मेरे सम्मुख यदि तुम सत्य स्वीकार कर भी लोगे तो तुम्हारे राजस्व को हानि नहीं पहुँचेगी। (कराहता है) पर नहीं, मैं भूल गया। तुम तो अपने शत्रु की इस विकल मृत्यु पर प्रसन्न हो रहे होगे। आज वह हुआ

जो तुम चाहते थे, और जो मैं नहीं चाहता था। मैंने अपने संपूर्ण जीवन का एक-एक पल महत्वाकांक्षा की टकराहट से बचने में लगाया। परंतु तुम्हारे सम्मुख मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हुए। वह देखो, अब अंधेरा बढ़ा जा रहा है। साँझ हो रही है, मेरे जीवन की अंतिम साँझ। (पृष्ठभूमि में सारंगी पर करुण आलाप, जो चढ़ता है) और उधर वे मेघ गिरे आ रहे हैं, द्रौपदी के बिखरे केशों की भांति। वे मुझे निगल लेंगे युधिष्ठर! जाओ, जाओ मुझे मरने दो। तुम अपनी महत्वाकांक्षा को फलते-फूलते देखो। जाओ गुरुजनों और बन्धु-बान्धवों के रक्त से अभिषेक कर राजसिंहासन पर विराजो! मैं तुम्हारे चरणों में रौंदे हुए कांटे की भांति तुम्हारे मार्ग से हट जाता हूँ।

युधिष्ठिर : इतने उत्तेजित न हो सुयोधन। वीरों की भांति धैर्य रखो।

दुर्योधन : घबराओ नहीं युधिष्ठिर! मेरी शांति के लिए तुम जो उपाय कर चुके हो, वह अचूक है। दो क्षण और। फिर मैं सदा को शांत हो जाऊँगा। पर अंतिम साँस निकलने से पहले युधिष्ठिर एक बात कहे जाता हूँ। तुम पश्चात्ताप की बात पूछने आये ना? मेरे मन में कोई पश्चात्ताप नहीं है। मैंने कोई भूल नहीं की। मैंने भय से तुम्हारी शरण नहीं मांगी। अंत तक तुम से टक्कर ली और वीरगति को पाकर स्वर्ग को जाता हूँ। समझे युधिष्ठिर! और मुझे कोई ग्लानि नहीं, कोई पश्चात्ताप नहीं है। केवल एक दुःख मेरे साथ जाएगा।

युधिष्ठिर : क्या?

दुर्योधन : यही कि मेरे पिता अन्धे क्यों हुए! नहीं तो, नहीं तो...

(करुण आलाप उठकर धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है)

***

भारतभूषण अग्रवाल :-

तारसप्तक के महत्वपूर्ण कवि, लेखक और समालोचक भारतभूषण अग्रवाल का जन्म 3 अगस्त 1919 को मथुरा के सतघड़ा मोहल्ले में हुआ। इन्होंने आगरा और दिल्ली में उच्च शिक्षा प्राप्त की और आकाशवाणी में तथा अनेक साहित्यिक संस्थाओं में सेवा की। सन् 1941 में इनका पहला काव्य संग्रह 'छवि के बंधन' प्रकाशित हुआ और इसके उपरान्त वे मारवाड़ी समाज के मुखपत्र 'समाज सेवक' के संपादक रहे। इसी दौरान वे कलकत्ता गए और वहाँ उनका परिचय बांग्ला साहित्य व संस्कृति से हुआ। वे 'तारसप्तक' (1943) में महत्वपूर्ण कवि के रूप में सम्मानित हुए और अपनी कविताओं एवं वक्तव्यों के लिए चर्चित हुए। 1948 में वे आकाशवाणी में कार्यक्रम अधिकारी बने। 1959 में उनका एक संग्रह 'ओ अप्रस्तुत मन' प्रकाशित हुआ, जो उनकी रचनात्मक परिपक्वता और वैचारिक प्रौढ़ता का निदर्शन था। 1960 में वे साहित्य अकादमी के उपसचिव बने। अपनी व्यंग्यमुखर प्रखरता के नाते उनकी रचनाएँ अपने समकालीनों से जितनी सर्वथा अलग प्रतीत होती हैं, उतनी ही आज भी महत्वपूर्ण और प्रासंगिक लगती हैं।

उनकी कुछ प्रमुख कृतियाँ : जागते रहो, ओ अप्रस्तुत मन, एक उठा हुआ हाथ, कागज़ के फूल, फूटा प्रभात, भारतत्व आदि हैं। उनके कविता संग्रह 'उतना वह सूरज' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया। द्विवेदी युग की तुकांत कविता से आरंभ कर प्रयोगवादी युग तक के अनेक रूपों में साहित्य सृजन करने वाले महान साहित्यकार भारतभूषण अग्रवाल जी का निधन 23 जून 1975 को हुआ।

'महाभारत की एक सांझ'

'महाभारत की एक सांझ' भारतभूषण अग्रवाल जी द्वारा लिखित प्रसिद्ध एकांकी है, जो पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें एक

पौराणिक कथावस्तु को नवीन रूप दिया गया है। लेखक ने यह भी समझाने का प्रयास किया है कि महाभारत के विनाशकारी युद्ध के लिए केवल दुर्योधन ही जिम्मेदार नहीं था, बल्कि पाण्डवों की महत्वाकांक्षी प्रवृत्ति भी किसी न किसी रूप में जिम्मेदार रही होगी। एकांकी में महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका था। अकेला दुर्योधन द्वैतवन के एक सरोवर में छिपा हुआ था। पांडवों के ललकारने पर वह विवश होकर बाहर निकलता है। भीम के साथ गदा युद्ध करता है और आहत होकर गिर जाता है। संध्या के समय जब युधिष्ठिर उसे सांत्वना देने आये तो उन दोनों के बीच जो संवाद होता है, वही इस एकांकी में व्यक्त किया गया है।

***

5. तुम्हारी माँ कहाँ है?

– पं. रामदरश मिश्र

''माँ, मेरी माँ कहाँ है?''

स्कूल से लौटा हुआ छोटा बच्चा उदास–उदास–सा अपनी माँ के पास आया और लिपट गया।

''व्हाट ब्वाय, तू क्या बोलता है? हम तुम्हारी मम्मी हैं और देखो डियर, गंदे बच्चों की तरह मां–मां नहीं कहते मम्मा या मम्मी कहते हैं।''

''नहीं माँ, मेरी माँ कहाँ है?'' बच्चा सुबकने लगा।

''ओह डियर, तुमको क्या हो गया है? हम तुम्हारा मम्मी है।'' कहकर माँ ने आया को पुकारा, ''देखो, बेबी को ले जाओ, हाथ–मुँह धुलाओ और नाश्ता दो!'' फिर उसने बच्चे को अपने से थोड़ा दूर करके साड़ी की क्रीज ठीक की, जूड़े पर हाथ फेरा, सेंटेड रूमाल निकालकर धीरे–धीरे रूजभरे गालों पर फिराया।

आया आई, लेकिन बच्चा उसके साथ नहीं गया, बस्ता पटकर जिद के साथ खड़ा रहा और माँ से बोला, ''नहीं मां, ठीक–ठीक बोलो, तुम्हीं मेरी माँ हो? आज हमारे स्कूल में एक स्पीकर आए थे, वे कह रहे थे कि तुम लोगों की माताएँ तो गाँवों में हैं, खेतों में काम करती हैं, पत्थर तोड़ती हैं, लोहा पीटती हैं और भूखों मरती हैं– पैदा होते ही उनकी संतानें उनसे छीन ली जाती हैं और सात समुन्दर पार बैठी हुई एक अंग्रेज औरत के इशारे पर ये औरतें– जिन्हें तुम लोग माताएं समझते हो– तुम्हें असली माता को भूल जाने की शिक्षा देती हैं। वास्तव में ये माताएं नहीं आयाएं हैं– जो उस अंग्रेज महिला की सेवा के लिए तुम लोगों को तैयार करती हैं। वह अंग्रेज महिला इन आयाओं और तुम सबकी मालकिन है। बच्चो ! जानते हो, वह कौन है?– अंग्रेजी!''

''व्हाट नॉनसेंस! दीज स्टुपिड हिन्दीवालाज़ ऑलवेज़ टॉक समथिंग वेरी फनी। आइ एम योर मम्मी बेबी!''

''नहीं–नहीं, वे कह रहे थे कि तुम लोग तो आयाएं हो और आया बनने में बहुत बड़े सम्मान का अनुभव करती हो।''

''ओह गॉड, तुम्हारे प्रिंसिपल साहब ऐसे–ऐसे रस्टिक लोगों को बोलने के लिए कैसे एलाउ करते हैं? तुम्हारे स्कूल में ये हिन्दी–फिंदी वाले कैसे बोलने चले आते हैं? हम अपने बच्चों को इन स्कूलों में, इतनी लंबी–लंबी फीस देकर इसलिए पढ़ाता है कि वे बच्चे देसी लोगों और देसी भाषाओं की गंदगी से बचे रहें। इसके लिए हम लंबा–चौड़ा डोनेशन भी देता है, क्या यही सब सीखने के लिए? कल हम तुम्हारे प्रिंसिपल से पूछता है कि यह सब क्या हो रहा है!''

तब तक उसी स्कूल की बड़ी क्लास में पढ़ने वाला– पड़ोसी लड़का एक इंगलिश गीत गुनगुनाता हुआ वहां आ पहुंचा, ''आई लव यू, एण्ड यू लव मी।''

''अरे मुकी, तुम्हारे स्कूल में आज यह कौन हिन्दीवाला गाली बक गया और तुम्हारे प्रिंसिपल साहब ने इस हिन्दीवाला को बोलने के लिए कैसे बुला लिया था और बुला भी लिया तो निकाल क्यों नहीं दिया?''

''ओह आंटी, वह हिन्दीवाला नहीं था, वह कोई रूसी स्कॉलर था और यहां एम्बेसी में कल्चरल अटैची है। प्रिंसिपल ने किसी खास 'परपज़' से बुलाया होगा। उन्हें क्या मालूम था– वह स्कूल में आकर हिन्दी–हिन्दी चिल्लाने लगेगा! आंटी, वह कितनी बढ़िया हिन्दी बोलता था! उससे लड़कों ने चिल्लाकर कहा, 'अंग्रेजी में बोलो।' तो बोला–'मुझे या तो रूसी आती है या हिन्दी। हमारे देश का कोई भी नागरिक अंग्रेजी नहीं बोलता–जानता है तो भी नहीं बोलता। अंग्रेजी बोलने में वह शर्म और अपमान अनुभव करता है।' आंटी, वह कहता था कि तुम लोग अमरबेल

हो–जिसकी अपनी जड़ें नहीं होतीं, जो पेड़ों पर फैलकर उनका रस चूस–चूसकर हरी होती रहती है, अपनी जमीन से उसका कोई वास्ता नहीं होता।''

''व्हाट अमरबेल, मुकी?''

''अमरबेल नहीं जानतीं आप आंटी? इसे अंग्रेजी में डाडर कहते हैं।''

''ओ, आई सी, दैट ब्लडी प्लांट?''

''हां आंटी, वह भी उसे ब्लाडी प्लांट ही कह रहा था।''

''सॉरी ब्वाय, वह ब्लडी प्लांट नहीं है, आइडियल प्लांट है!''

''हां आंटी, वह भी कह रहा था कि वह प्लांट, तुम्हारे वर्ग का आइडियल प्लांट है।''

''ओह नो–नो ब्वाय, लीव दिस अनवांटेड रेफ़रेंस– एण्ड लेट दैट रशन स्कॉलर गो टू हेल! एण्ड यू गो टू स्वीटी, शी माइट बी वेटिंग फॉर यू।''

''ऑल राइट आंटी!'' कहकर मुकी मस्ती से गाता हुआ स्वीटी की ओर चल पड़ा....''आई लव यू, एण्ड यू लव मी....'' अंदर जाकर अपने हिप्पी–कट बालों को एक झटका देकर पुकारा–स्वी....टी!''

''हल्लो मुकी,'' स्वीटी की आवाज़ थी, और मुकी सीटी बजाता हुआ अंदर जा पहुंचा, और जाकर ग्रामोफोन पर एक इंगलिश का रेकार्ड लगा दिया और दोनों रेकार्ड की धुन पर अलमस्त होकर ट्विस्ट करने लगे।

छोटा लड़का नाश्ता करने के बाद वहाँ आ गया और अपनी बहन से पूछने लगा,''जीजी, मेरी मां कहाँ है?''

मुकी हंसने लगा, और स्वीटी ने डांटते हुए कहा, ''यू कण्ट्री ब्वाय, कांट यू प्रोनाउन्स सिस्टर और स्वीटी? जीजी....यह जीजी क्या होता है? और ऐसा उलटा–पुलटा सवाल क्यों पूछता है बाबा? मम्मी तो अपने घर पर ही है...!''

मुकी ने हंसते हुए, स्कूल में घटी घटना बता दी; और उसके साथ स्वीटी भी हंसने लगी– फिर दोनों रेकार्ड की धुन पर कमर और सिर हिला–हिलाकर ट्विस्ट करने लगे। और वह लड़का उदास–सा दूसरी ओर भटक गया।

और ऐसे ही तमाम छोटे–छोटे बच्चे अपनी असली मां से कटे हुए, देश में भटक रहे हैं। वे पैदा होते ही सौंप दिए जाते हैं एक अप–टू–डेट आया के हाथ, जो पाल–पोसकर उन्हें समझाती है कि तुम देशी नहीं, विदेशी बच्चे हो! लेकिन यह लड़का विदेश का पूरा रंग चढ़ने के पहले ही अपनी माँ की पूछताछ करने लगा। यही तो इसकी बेचैनी है, यही तो इसके भटकाव का कारण है।

उस रूसी विद्वान ने कहा था कि तुम्हारी माँ तो भारत के गाँवों में है, शहरों के कारखानों में है– खेतों में काम करती हुई, पत्थर तोड़ती हुई, मिट्टी की हंसी हंसती हुई, मिट्टी की व्यथा रोती हुई। मिट्टी की ताकत उसकी ताकत है– वही अन्न पैदा करती है, जिसे तुम लोग खाते हो; और वही वस्त्र बुनती है, जिसे तुम लोग पहनते हो; वही वे सारे सामान बनाती हैं, जिसे तुम लोग काम में लाते हो और जिससे अपने को सजाते हो। लेकिन तुम लोग उसे नहीं जानते। अंग्रेजी के आदेश पर ये आयाएं तुम्हें सिखाती हैं कि तुम लोग उसे भूल जाओ और तुम भूलते ही नहीं, उसका मज़ाक भी उड़ाते हो, उसे गाली देते हो; कोशिश करते हो कि वह भूखी मरती रहे। कितना अभागा होता है वह बच्चा, जो मातृविहीन होता है; और उससे भी अभागा वह होता है, जो दूसरे की माँ को माँ समझकर, अपनी माँ होने का अहसास ही नहीं कर पाता। तुम लोग अभी नशे में हो; जब कभी नशा टूटेगा और कभी वापस लौटोगे तो मालूम पड़ेगा कि तुमने और तुम्हारे देश ने कितना खोया है! गुलामी चाहे शारीरिक हो, चाहे मानसिक उसमें आदमी विकास नहीं कर सकता। यह सच है कि तुम्हारा देश आजाद हो गया है, लेकिन तुम्हारा मन अभी आजाद नहीं हुआ है–वह अभी अंग्रेजी और अंग्रेजियत की दासता से बुरी तरह जकड़ा हुआ है।

कितना सच कहा था, उस विद्वान ने! इसीलिए सारे समाजवादी देशों ने– और अन्य बहुत–से देशों ने भी आजादी के साथ–साथ भाषा के प्रश्न को अपरिहार्य भाव से जोड़ रखा है। भाषा की आज़ादी के बिना, देश की आजादी की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं– वह हमारे चरित्र का एक अंग है; वह हमारी अनुभूति, हमारी चिंतना और हमारे जीवन–संघर्ष में रची–बसी होती है। वह अपने साहित्य में, देश की आत्मीयता का रस और अपनी मिट्टी की ऊर्जा संजोए रहती है। इसीलिए जो व्यक्ति अपनी भाषा से जुड़ता है, स्वभावत: उसका चरित्र देश के संदर्भ में निर्मित होता है। वह भाषा हमें अपने में निहित देश की धरती की गंध, ऊर्जा, सांस्कृतिक परंपरा, तत्कालीन जन–जीवन की सारी खुरदरी और स्निग्ध चेतना से जोड़ती है और हमें एक राष्ट्रीय चरित्र प्रदान करती है। आज राष्ट्रीय चेतना से जोड़ने वाली इन भारतीय भाषाओं को गंवारू, मटमैली मानकर उपेक्षा की जाती है। राष्ट्रीयता की बुनियाद के बिना ही, एक अरूप अंतर्राष्ट्रीयता या सार्वभौम चेतना का स्वांग भरने वाली अंग्रेजी की पूजा होती है। अंग्रेजी का फटा ढोल देशवासियों के गले में लटका दिया जाता है। जो लोग इस ढोल को अप्रासंगिक और अनावश्यक बोझ समझकर बजाने से इनकार करते हैं, उनके लिए मान लिया जाता कि उनकी अंतर्राष्ट्रीय चेतना की खिड़की नहीं खुली है और वे इस देश में बसने लायक नहीं हैं।

किंतु चेतना और सभ्यता की बातें तो ऊपरी हैं; इन चेहरों के पीछे जो असली चेहरा है– वह है पैसे का चेहरा! एक विशेष सुविधाजीवी वर्ग का विकृत आर्थिक चेहरा सभ्यता और अंतर्राष्ट्रीय चेतना के नकली चेहरे से ढका है। अंग्रेजी कुछ गिने–चुने लोगों को पद देती है, और पैसा देती है। वर्तमान भारतीय समाज व्यवस्था में रुतबा तो देती ही है, किन्तु रुतबा तो अमूर्त्त वस्तु है; मूर्त्त और ठोस वस्तु तो है पद और पैसा और अन्ततोगत्वा पद का भी संबंध अधिकार और अधिकार का संबंध पैसे ही से होता है। राष्ट्रीय चरित्र से हीन और और अभी भी दास मानसिकता वाला

एक वर्ग यह जानता जरूर है कि अंग्रेजी में फिसलते रहने से और अंग्रेजी चाल–ढाल में ढलकर सामान्य जन से कटकर जीते रहने से फिलहाल गौरव तो प्राप्त होता है; किंतु वह गौरव एक दिन में समाप्त हो जाए, उसकी सारी अभिजात संस्कृति और सभ्यता, नफरत और हवाई बड़प्पन का चोगा एक क्षण में सरककर उसे नंगा और नि:सत्व कर दे यदि अंग्रेजी के द्वारा प्राप्त होनेवाली सुविधाएं और समृद्धि उसे प्राप्त न हों। अंग्रेजी के आग्रह के पीछे कुछ लोगों की यह सुविधाभोगी और अर्थमूलक चेतना है और इस चेतना को बेशर्मी से जिलाने का प्रयत्न करती रहती है अपने को समाजवादी कहने वाली सरकार, जनवादी कहे जाने वाले नेता और राष्ट्रीय शिक्षा का झूठा दम भरने वाले शिक्षाशास्त्री। अंग्रेजी के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान, सभ्यता और चेतना की खिड़की खोलने के पीछे सुविधाजीवी वर्ग का एक विराट और कुत्सित् षडयंत्र काम कर रहा है और इस षडयंत्र में शामिल हैं मंत्री, नेता, उच्च व्यवसायी, उच्च सरकारी अफसर और छोटे–बड़े शिक्षाशास्त्री और विडंबना यह है कि मंच पर भारतीय भाषाओं के हित का ढिंढोरा पीटने वाले भारतीय भाषाओं के शिक्षक भी व्यवहार में अंग्रेजी की हिमायत ही नहीं करते, अपने बच्चों की चाल–ढाल को भी अंग्रेजियत में सराबोर करने की चेष्टा करते रहते हैं, ताकि वे तो भारतीय भाषाओं के नेता बनकर कमाएं और बेटा अंग्रेजी अफसर होकर पद और धन–लाभ करे। यह दोहरा चेहरा केवल भाषा के ही क्षेत्र में नहीं है समस्त राष्ट्रीय समस्याओं के क्षेत्र में है। इसलिए पूरा देश, बड़ी–बड़ी जनवादी घोषणाओं के बावजूद, निरंतर समस्याओं में उलझता ही जा रहा है।

अंग्रेजी विशेष वर्ग को पद और पैसा देती है, इसीलिए इस वर्ग ने (जो सरकार में है, प्रभावशाली उच्च समाज में है) अंग्रेजी के ज्ञान को ही प्रतिभा या मेधा का पर्याय मान लिया है। यदि एक क्षण के लिए इसे मेधा का पर्याय मान लिया जाए, तो सामाजिक समानता का डंका पीटनेवाली इस समाजवादी सरकार से पूछा जा सकता है कि उसने देहातों में इस मेधा

यानी अंग्रेजी–शिक्षा और वातावरण की निर्मिति का क्या प्रयत्न किया है और खेती–बारी, धूल–कीचड़, गरीबी और अभाव में पलकर पढ़ने वाले देहाती वातावरण के बच्चों को शहरी स्कूलों के निकट और शहर के सामान्य स्कूलों को शहर के पब्लिक स्कूलों के निकट लाने का क्या प्रयत्न किया है? देश के इतने बड़े देहाती क्षेत्र ने क्या अपराध किया है कि उसे अंग्रेजी ज्ञान वाली मेधा के वरदान से वंचित किया जा रहा है? सरकार, सुविधाओं और वातावरण की इतनी भयानक असमानता के होते हुए भी प्रतियोगिताओं में दोनों के अंग्रेजी ज्ञान का समान स्तर कैसे पाना चाहती है? क्या यह सरकार आई.ए.एस., पी.सी.एस. आदि प्रतियोगी–परीक्षाओं में इंग्लिश को मेधा का पर्याय बनाकर, निहायत बेशर्मी के साथ इतने बड़े देश की विराट किसान–मजदूर जनता का खुलेआम अपमान नहीं कर रही है? क्या यह उसका कुत्सित षडयंत्र नहीं है कि अधिकांश किसानों और मजदूरों के बेटे नौकरी में चपरासी, क्लर्क, प्राइमरी या मिडिल स्कूल के शिक्षक, सिपाही, पहरेदार बनकर रह जाएं और कलक्टर, कमिश्नर, राजदूत, राज्यपाल, सेक्रेटरी आदि अनेक उच्च पदों पर वे बच्चे आसीन हों, जिनमें से अधिकांश को यह नहीं मालूम कि त्रिवेंद्रम कहाँ है, उड़ीसा कहाँ है, विवेकानंद कौन थे, हमारा रक्षा मंत्री कौन है, हमारे भारतीय पर्व कौन–कौन से हैं, कौन–कौन हमारे सांस्कृतिक और साहित्यिक नेता हुए हैं और गाँव का वास्तविक जीवन क्या है कामसूत्र के वात्स्यायन और 'शेखर : एक जीवनी' के वास्त्यायन एक ही व्यक्ति हैं या दो हैं? लेकिन नहीं, अंग्रेजी को मेधा का पर्याय मानना, झूठ और न्यस्त स्वार्थ वाले वर्गों का कुत्सित षडयंत्र है। मेधा रचनात्मक होती है, और रचनात्मकता का संबंध अपनी भाषा और परिवेश से होता है– वह दूसरों की भाषा, साहित्य और जीवन–पद्धतियों की नकल से नहीं आती। अंग्रेजी यदि ज्ञान मात्र देती, तो भी गनीमत थी! वह हमें अंग्रेजियत देती है, हमें अपने परिवेश और परंपरा से कटना ही नहीं, उनका मजाक उड़ाना सिखाती है; वह अपने परिवेश की मिट्टी से अपने देश के अनुकूल नयी रचना करने के स्थान पर,

बने–बनाये विदेशी माल का आयात करना सिखाती है और आयात पर कोई टैक्स नहीं लगता, इसलिए वह माल अप्रतिबंधित रूप से बाजार में आता रहता है। कितने शर्म और दुख की बात है कि जब अनेक देश अपनी–अपनी भाषाओं के माध्यम से सोचने–विचारने और नयी रचना की शक्ति का अप्रतिहत भाव से विकास कर रहे हैं; तब हमारे देश में भारतीय भाषाओं को सोच–विचार और रचना में बाधक मानकर उनके समर्थको को हीन और हेय दृष्टि से देखा जाता है। हिन्दी में शोधग्रंथ तथा एम.ए. का प्रश्न–पत्र लिखनेवाले अन्य विषयों के छात्रों को दंडित होना पड़ता है। जब एक ओर इस तरह के लोग अपनी भाषा के माध्यम से देश की रचनात्मक शक्ति के विकास के लिए जूझ रहे हैं; तब दूसरी ओर अंग्रेजी के दत्तक पुत्र लोग शीशे के कमरे में बैठकर पद और पैसे का उपयोग कर रहे हैं और खिड़की से झांककर, राह चलने वाली देशी गंवार जनता के सिर पर मुसकराकर थूक देते हैं और थूकने के बाद भी सभ्य और सुसंस्कृत होने का अपना गौरव अक्षुण्ण रखते हैं।

मेधा या प्रतिभा क्या है?– आजाद भारत छब्बीस वर्षों में भी इसकी सही परिभाषा नहीं बना सका; इसलिए एक छोटा–सा वर्ग असली प्रतिभा का उपहास कर अपने प्रतिभाभास के सहारे विशाल जनसमूह का अपमान करता चला आ रहा है। प्रतियोगी परीक्षाओं में ओंठ बना–बनाकर बोली जाती हुई अंग्रेजी और उसके साथ–साथ मुँह खोलने, बाल और टाई ठीक करने, चम्मच और कांटा उठाने, आँख मिचकाने, बात–बात में थैंक्स और सॉरी कहने की अदा प्रतिभा का प्रतीक बन गई है, यहाँ तक कि फौजी प्रतियोगिताएं भी इस अदाकारी से मुक्त नहीं हो सकी हैं। प्रतियोगी की शारीरिक और मानसिक शक्ति कितनी है, संकट के समय वह क्या सोचता है, उनसे मुक्त होने या जूझने के लिए उसके मस्तिष्क में क्या योजनाएं उगती हैं, उन्हें कैसे क्रियान्वित किया जा सकता है, देश की जमीन के प्रति उसका अनुराग कितना झूठा या सच्चा है, अपने इतिहास–भूगोल और वर्तमान जीवन–यथार्थ का उसे कितना ज्ञान है, वह युद्ध की प्रणालियों से

कितना परिचित है– आदि बातों से ही उसकी मेधा की पहचान हो सकती है और फिर कितनी विचित्र बात है कि जीवन में अनके संकटों से निरंतर जूझते रहने वाले संकट झेलने के अयोग्य और शीशों के कमरों में से ताजा–ताजा निकले हुए अंग्रेजी–कुमार लोग योग्य मान लिए जाते हैं।

अजीब विडंबना है कि अंग्रेजी के माध्यम से पालित–पोषित और शिक्षित बालकों में अधिकांश का संबंध नगरों और विदेशी जीवन–पद्धतियों से होता है, उन्हें शुरू से ही देशीपन की उपेक्षा करना सिखाया जाता है। वे ही अंग्रेजी की बैसाखी के सहारे जब जनता के अफसर बनते हैं, तो जनता के साथ उनका कितना लगाव हो सकता है– इसे समझा जा सकता है। गांव और सामान्य जनता को भुनाना और घृणा करना ही इनका चरित्र होता है। वे गांवों की जनता के दु:ख–दर्द को समझने के स्थान पर उसका मजाक उड़ाते हैं, और बड़े बने रहते हैं। आखिर इस देश में यह सब कब तक चलता रहेगा? जनता के नाम की माला जपने वाले वामपंथी भी तो इस प्रश्न पर नहीं सोचते। जब रूसी स्कॉलर इस देश में आकर इस देश की असली मां की तलाश करता है, तब हमारे देशी साम्यवादी, देश–विदेश दोनों में अपनी विदेशी माँ या मालकिन का आंचल पकड़े घूमते हैं, इस देश के वामपंथी हों या दक्षिणपंथी, इस क्षेत्र में सबके चेहरे एक से हैं और अन्य देशों के स्वभाषा–प्रेम को देखते हुए भी उनके बीच वे भी बेशर्मी से अपनी भाषा की उपेक्षा करते रहते हैं।

'तुम्हारी माँ कहाँ है?' पूछता है एक रूसी, एक चेक, एक चीनी, एक जापानी, एक जर्मन, एक फ्रेंच– और हमारा देशभक्त अंग्रेजी की ओर इशारा करके कहता है, 'ये रही मेरी मम्मी!' और दांत निपोर देता है।

वह विदेशी हंसता हुआ कहता है, 'नहीं, यह तुम्हारी मां नहीं है, यह तो विदेशी मालकिन है। तुम्हारी मां तो खेतों में काम कर रही है, कारखानों में कोयला झोंक रही है, वह सुबह की लाली और सावन की हरियाली उगा रही है, वह गीतांजलि और गोदान लिख रही है; वह पहाड़ों,

जंगलों और समुद्रों के सौंदर्य लिख रही है, ऊसरों और रेगिस्तानों की उजाड़ गाथा सुना रही है, वह भूख और बेकारी से घायल लोगों का दर्द गा रही है, वह कोटि–कोटि उठी हुई बांहों के समवेत संघर्ष की अटूट जिजीविषा चित्रित कर रही है....।'

''नहीं–नहीं, यह गंवार देशी औरत मेरी मां नहीं हो सकती!'' हमारा देश–भक्त बेशर्मी से चिल्लाता है और वह विदेशी–उपहास और करुणा–भरी हंसी हंस देता है।

''माँ, मेरी माँ कहाँ है?'' वह बच्चा फिर लौट आया है और अपनी मम्मी से पूछ रहा है लेकिन उसे उत्तर नहीं मिलता, उसके स्वर में दर्द है और आँखों में असीम भटकाव....।

***

डॉ. रामदरश मिश्र :–

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य जगत में डॉ. रामदरश मिश्र का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उनका समग्र साहित्य उनके जीवन का दर्पण है। सुधी कवि, कथाकार, समीक्षक रामदरश मिश्र का जन्म 15 अगस्त 1924 को उत्तर प्रदेश के डुमरी गाँव में हुआ। उनका जन्म मध्यवर्गीय परिवार में होने के कारण बचपन अभाव में ही बीता। उनके बड़े भाई रामअवध मिश्र ने ही उनके परिवार को गरीबी के अभिशाप से निकालने के लिए संघर्ष किया। इनको अपने बड़े भाई से असीम प्यार मिला, उसी प्यार ने उन्हें उच्च शिक्षा दिलायी और जीवन के उच्चतम लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया। इनका समग्र साहित्य यथार्थ से भरा–पूरा है। वे कल्पना की अपेक्षा वास्तविकता को देखने–समझने के लिए लालायित रहे हैं। पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी को अपना परम प्रिय गुरु मानने वाले मिश्र जी को उन्हीं की वजह से अस्थायी लेक्चररशिप मिली थी। द्विवेदी जी ने यू.जी.सी. को पत्र लिखकर बनारस विश्वविद्यालय में दो अस्थायी व्याख्याताओं की जगह मांगी थी। एक पर नामवरसिंह और दूसरे पर रामदरश मिश्र को नियुक्ति दे दी थी। पर एक ही जगह की स्वीकृति हुई तो आर्थिक अभाव के होते हुए भी उन्होंने खुद को हटाया।

इनका साहित्यिक जीवन कविताओं से शुरू हुआ। अब तक इनके 12 कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कहानियों की भी मुख्य विशेषता है। उनमें द्वंद्व, तनाव एवं संघर्ष की विविध भंगिमाओं आदि को स्थान प्राप्त है। इन्होंने हिन्दी आलोचना पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं की कृतियों पर उन्होंने समीक्षात्मक विचार प्रकट किये हैं। इनके अलावा आत्मकथात्मक साहित्य, ललित निबन्ध, संस्मरण, उपन्यास आदि भी लिखा है।

प्रमुख रचनाएँ :–

पथ के गीत, कन्धे पर सूरज, हँसी ओंठ पर आँखें नम हैं आदि (काव्य)

खाली घर, बसन्त का एक दिन, सवाल के सामने, सर्पदंश, एक वह, दिनचर्या, इकसठ कहानियाँ, मेरी प्रिय कहानियाँ आदि (कथा संकलन)
साहित्य संदर्भ और मूल्य, आज का हिन्दी साहित्य आदि (आलोचना)
जहाँ मैं खड़ा हूँ, सहचर है समय आदि (आत्मकथा)
स्मृतियों के छन्द, अपने–अपने रास्ते (संस्मरण)
पानी के प्राचीर, सूखता हुआ तालाब, जल टूटता हुआ आदि (उपन्यास)

हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास परीक्षा गुरु की भूमिका भी डॉ. रामदरश मिश्र जी ने लिखी है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य जगत में अपना उल्लेखनीय योगदान देकर उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान हासिल किया है।

'तुम्हारी माँ कहाँ है ?'

प्रस्तुत रचना में डॉ. रामदरश मिश्र जी ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली में व्याप्त पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभुत्व और लुप्त होती भारतीय संस्कृति की ओर संकेत किया है। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के कारण भारत के बच्चे किस प्रकार अपनी सहज संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं, इस चिंताजनक स्थिति का परिचय उन्होंने अपने इस चिंतनपरक निबन्ध में किया है। मध्यवर्गीय परिवारों के मन में गहरी पैठ बना चुकी पाश्चात्य–संस्कृति के व्यामोह का जिक्र करते हुए मिश्र जी ने पाठकों को अपने जीवन मूल्यों को सहेजने और संरक्षित करने का आत्मीय सुझाव भी दिया है। आज के बच्चे अपनी जननी ही नहीं अपितु जन्मभूमि से भी दूर होते जा रहे हैं। यह प्रश्न लेखक की ओर से हम सबके लिए उठाया गया है। हमें अपने अन्तर्मन को टटोलने पर ही इस गंभीर प्रश्न का समुचित समाधान मिल सकता है।

***

6. डॉ. विनायक कृष्ण गोकाक

– विष्णु प्रभाकर

प्रथम दृष्टि में डॉ. गोकाक एक शान्त–सौम्य प्रतिमा की तरह दिखते है। चेहरे पर वैसी ही मधुर स्मिति, वाणी में वैसी ही सहज आत्मीयता, दृष्टि में वैसा ही गहरा आत्मविश्वास जैसे कहीं बहुत दूर से आपकी ओर झांकते हों। उन्हें सभा संचालन करते हुए देखना अपने में एक अनुभव रहा है मेरे लिए। दूसरों की बातें बड़े ध्यान से सुनते हैं पर अपनी बात पर भी उतने ही दृढ़ रहते–'मैं जानता हूँ मेरे लिए कौन उपयोगी हो सकता है।'और बात को समाप्त कर देते इस तरह कि दूसरा अपने को छोटा भी महसूस न करे।

वे कुशल व्यवस्थापक हैं। उससे भी कुशल और प्रतिभाशाली सर्जन हैं। ये दोनों गुण किसी एक व्यक्ति में विरल ही होते हैं। उनकी कुशलता का एक रहस्य जो मैं समझ सका वह यह है कि वे अपने को किसी पर आरोपित नहीं करते और किसी का आरोपण भी स्वीकार नहीं करते और यह भी कि वे निर्णय लेना जानते हैं सबकी सम्मति का सम्मान करते हुए।

मुझे पांच साल तक केन्द्रीय साहित्य अकादमी में उनके साथ काम करने और उन्हें पास से देखने का सुयोग मिला है। मैंने उन्हें कभी उत्तेजित होते नहीं देखा। व्यर्थ की बातें करते हुए भी नहीं देखा। विषय से सम्बद्ध यथासम्भव संक्षिप्त पर अनुभूत विचार जो उनकी दीर्घ परिपक्व जीवन–दृष्टि के परिचायक होते हैं, वे ही सुनने को मिलते हैं।

वे सत्य साईं बाबा के भक्त हैं। उनके विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे हैं। जब वे साहित्य अकादमी के अध्यक्ष चुने गए तो बहुत–से अपवाद प्रिय मित्रों ने उड़ा दिये कि अब साहित्य अकादमी सत्य साईं बाबा अकादमी बन जायेगी, परन्तु मैं नहीं जानता कि उसे पूरे पांच साल की अवधि में परोक्ष या अपरोक्ष रूप में उन्होंने कभी साईं बाबा की चर्चा भी की हो, उनके विचारों को आरोपित करने की बात तो बहुत दूर की बात है।

वे अत्यन्त व्यवहारकुशल व्यक्ति हैं। वैसी ही सुलझी हुई दृष्टि है। वे जानते हैं कि कब कहाँ क्या करना है अन्यथा बाईस भाषाओं के प्रतिनिधियों को एक सूत्र में गूंथे रखना कितना कठिन काम है। विचारभेद भी होता, विवाद भी उभरता है। जनतंत्र में यह स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी है। यही तो चेतना का प्रतीक है, पर इसको रचनात्मक रूप कैसे दिया जाता है यदि आप यह नहीं जानते तो विघटन और विद्रोह को आमन्त्रित करते हैं। साहित्य अकादमी में यह स्थिति कभी नहीं आई। बाइस मणियों वाली यह माला सदा अन्तर और बाह्य को एक रूप रख कर आलोक बिखेरती रहती है।

एक घटना मुझे याद आती है। साहित्य अकादमी की पत्रिका में बाइस भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशित होती हैं, इसलिए यह सम्भव नहीं हो सकता कि किसी एक भाषा के लेखक की रचना निरन्तर तीन या चार अंकों में छपे। एक बार ऐसा हो गया। स्वाभाविक था, दूसरी भाषाओं के प्रतिनिधियों ने इस पर आपत्ति की।

इस प्रश्न को लेकर तूफान उठ सकता था पर हम दो–तीन मित्रों ने मिलकर निश्चय किया कि यह बात कार्यकारिणी में आवे इससे पूर्व क्यों न हम अध्यक्ष से बात करके उनसे निवेदन करें कि वे सम्पादक को इस सम्बन्ध में सावधानी बरतने को कहें।

तब मैंने डॉ. गोकाक को इस तथ्य से अवगत कराया और सुझाव दिया कि आप तो अध्यक्ष होने के नाते उसकी नीतियों और सीमाओं से परिचित हैं, अगर कभी नीति–विरुद्ध कार्य होता है तो आप सम्पादक को अपनी रीति से चेता सकते हैं।

डॉ. गोकाक ने बड़े ध्यान से मेरी बातें सुनीं और मामले की नाजुकता को पहचाना। उन्होंने कैसे और क्या किया यह जानने की मैंने कोई कोशिश नहीं की क्योंकि उसके बाद वैसी घटना फिर नहीं दोहराई गयी।

उनकी मातृभाषा कन्नड़ है पर इंग्लिश पर भी उनका मातृभाषा जैसा ही

अधिकार है। दोनों भाषाओं में समान रूप से लिखा है उन्होंने और समान अधिकार से भी लिखा है। कन्नड़ में उनकी कृतियों की संख्या लगभग 50 है तो अंग्रेजी में भी 25 से कम नहीं है। इसी प्रकार कविता, नाटक, कथा, यात्रा–संस्मरण और समीक्षा साहित्य, इन सभी विधाओं में समान अधिकार से लिखा है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। साहित्य के क्षेत्र में श्री द.रा. बेन्द्रे, अध्यात्म के क्षेत्र में श्री अरविन्द और भक्ति के क्षेत्र में सत्य साईंबाबा से वे प्रभावित हैं और वह प्रभाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है; पर उन्होंने अंधानुकरण नहीं किया है। उनकी स्वीकृति, अस्वीकृति का आधार सदा विवेक रहा है। अपनी अस्मिता को उन्होंने कभी दांव पर नहीं लगाया। उनसे मतभेद हो सकता है पर उनकी ईमानदारी और सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति को स्वीकार किये बिना उनका मूल्यांकन नहीं हो सकता।

यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे उनके साहित्य का गहन अध्ययन करने का अवसर नहीं मिला। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि अपनी मातृभाषा कन्नड़ में नई कविता का सूत्रपात उन्होंने ही किया है। उन्हें जिस कृति पर ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है वह है 'भारत सिन्धु रश्मि'। यह महाकाव्य मुक्त छन्द में 35000 पंक्तियों में सर्जित हुआ है। इसका संक्षिप्त सार अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ है। उसकी एक प्रति डॉ. गोकाक ने मुझे अपने हस्ताक्षर सहित दी थी। वही मैंने पढ़ी। वह कोई धर्म ग्रन्थ नहीं है परन्तु प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर निर्मित आर्य संस्कृति के स्त्रोत तथा आर्य और द्रविड़ सभ्यता के समन्वय का प्रामाणिक दस्तावेज अवश्य है। बल्कि कवि की समग्र दृष्टि का परिचायक भी है। क्या स्वरूप था वेदकालीन समाज का और ईसा पूर्व 2000 वर्ष के भूगोल और इतिहास की क्या स्थिति थी, यही सब उसमें है।

उस समय के घोर संघर्ष में जो महान शक्तियाँ क्रियाशील थीं उनमें महर्षि वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र और अगस्त्य तथा महावीर सुदास, सत्यव्रत जैसे जीवन्त हो उठे हैं। ऋषिपत्नियाँ भी कम सक्रिय नहीं, अरुंधति,

लोपामुद्रा और रेणुका–सबके प्रति हमारा मस्तक झुक जाता है।

लेकिन उन्होंने जिस कुशलता से इन पूज्य और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के चित्र उकेरे हैं वैसा ही न्याय कण्व आदि खलनायकों के प्रति भी किया है। उनके चरित्र का रेखांकन भी उसी कुशलता से किया है।

अब तक हमारे विद्वानों ने प्राय: रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों के माध्यम से ही पूरी–संस्कृति का आंकलन किया है, वेदकालीन मिथकों की ओर बहुत कम ध्यान दिया है। डॉ. गोकाक ने 'भारत सिन्धु रश्मि' का सृजन करके हमें नयी दृष्टि दी है और इससे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने उस युग को आज के सन्दर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया है। यह मात्र वेदकालीन समाज का रेखाचित्र ही नहीं है। उसके माध्यम से कवि मनुष्य की शाश्वत समस्याओं से भी जूझा है।

मेरी इस विषय में रुचि रही है पर किसी अधिकार का दावा मैं नहीं कर सकता। फिर भी अंग्रेजी सारांश को पढ़कर मुझे लगा कि लेखक ने अमुक व्यक्ति के साथ न्याय नहीं किया। यह बात मैंने बधाई देते हुए उनसे कही भी थी। उन्होंने बड़े ध्यान से मेरी बात सुनी और अपने स्वभाव के अनुरूप मेरी शंका का समाधान भी किया। फिर अन्तिम तो कुछ भी नहीं है और किसी कृति का मूल्यांकन मात्र किसी एक व्यक्ति के साथ न्याय–अन्याय से नहीं हो सकता है वह तो समग्रता के परिप्रेक्ष्य में ही हो सकता है।

इस दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है इसलिए भी कि जो मिथक उन्होंने लिये वे मात्र रूपरेखा के रूप में थे। उन्हें मांसल कथा का रूप देने में कवि को अपनी कल्पना–शक्ति और कलात्मक प्रतिभा का प्रचुर प्रयोग करना पड़ा है। वहीं उसकी कुशलता परिलक्षित होती है।

इस महाकाव्य को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इसे मूल कन्नड़ में ही पढ़ना उचित है या फिर उसका हिन्दी में प्रामाणिक अनुवाद हो।

लेकिन जितना कुछ भी जान सका उसके आधार पर कहा जा सकता है कि

‘भारत सिन्धु रश्मि’ भारतीय साहित्य को उनकी बहुमूल्य देन है।

अपने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में एक स्थान पर स्वयं उन्होंने जो कुछ कहा है, वह न केवल इसकी कथा–वस्तु पर प्रकाश डालता है बल्कि उनकी अपनी मान्यता को भी स्पष्ट करता है–

‘‘मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को काव्य का नायक बनाकर मैं ‘भारत सिन्धु रश्मि’ नामक महाकाव्य की रचना कर सका हूँ। विश्वामित्र की आकर्षक, महोन्नत और मार्मिक वर्चस्विता के सम्बन्ध में रामायण और महाभारत हमारे प्राचीन गौरव–ग्रन्थ होते हुए भी हमें वह रोमांचक अनुभूति नहीं प्रदान कर सके जिसे हम ऋग्वेद में पाते हैं। उसमें इस महान व्यक्तित्व की बहुमुखी भव्यता के साथ पूरा न्याय हुआ है। वे एक महान कवि थे, राजा थे, योद्धा थे, ऋषि थे और एक ऐसे जननायक थे, जिन्होंने सप्तसिन्धु जैसे छोटे और विभक्त राज्य को एक महान राष्ट्र, भारतवर्ष का रूप दिया और आर्य–द्रविड़ संस्कृति नाम से एक सामासिक संस्कृति और धर्म से उसे संश्लिष्ट किया। वे वैदिक पुनरुत्थान के समय के कीलक व्यक्ति थे, जिन्होंने लोगों के चिंतन, भावना और जीवन को राष्ट्रीय रूप देकर जन–जीवन में नवचेतना संचारित कर दी।’’

सम्मान किसी के मूल्यांकन का सही मानदण्ड नहीं है। फिर भी डॉ. गोकाक को जो भी सम्मान मिले, ज्ञानपीठ पुरस्कार सहित, देने वाले उनसे स्वयं ही गौरवान्वित हुए हैं।

डॉ. गोकाक मात्र सर्जक ही नहीं, प्रौढ़ शिक्षाविद् भी हैं। अध्यापक से उपकुलपति तक की उनकी यात्रा इस बात का प्रमाण है। वे अनेक महत्त्वपूर्ण कमीशनों के अध्यक्ष भी रहे हैं।

लेकिन उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे नितान्त निरभिमानी, संवेदनशील और दूसरे के दृष्टिकोण को आदर देने वाले कर्मठ इन्सान हैं। ऐसे ही इन्सान आज विरल होते जा रहे हैं।

***

विष्णु प्रभाकर :–

विष्णु प्रभाकर हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक थे, जिन्होंने अनेकों लघु कथाएँ, उपन्यास, नाटक और यात्रा संस्मरण लिख। इनका जन्म 21 जून 1912 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के मीरापुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री दुर्गाप्रसाद और माता का महादेवी था। विष्णु प्रभाकर पर महात्मा गांधी जी के जीवन दर्शन और सिद्धान्तों का गहरा असर पड़ा था। अपने दौर के महान लेखकों में वे प्रेमचन्द, यशपाल, जैनेन्द्र और अज्ञेय जैसे महान साहित्यकारों के सहयात्री रहे, लेकिन रचना के क्षेत्र में इनकी अलग पहचान रही। इनकी रचनाओं में देशप्रेम, राष्ट्रवाद और सामाजिक विकास मुख्य भाव है। वे हिसार की एक नाटक मंडली में थे, आज़ादी के बाद वे नई दिल्ली आए और 1955 से 1957 तक आकाशवाणी में नाट्य निर्देशक के पद पर नियुक्त रहे।

उनका आरम्भिक नाम विष्णु दयाल था। एक संपादक ने उन्हें प्रभाकर.का उपनाम रखने की सलाह दी थी। उन्होंने साहित्य की हर विधा में अपनी लेखनी चलाई। शरतचन्द्र की जीवनी, आवारा मसीहा लिखने के लिए उन्हें नाथूराम शर्मा प्रेम ने प्रेरित किया। यह जीवनी छपी तो साहित्य में उनकी धूम मच गयी। यह कृति इनकी पहचान का पर्याय बन गयी। अर्द्धनारीश्वर पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार तो मिला परन्तु आवारा मसीहा ने साहित्य के क्षेत्र में उनके नाम को अमर कर दिया।

विष्णु जी का निधन 11 अप्रैल 2009 को हुआ। साहित्य जगत के इस महान साहित्यकार की इच्छा के अनुसार उनके पार्थिव शरीर को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान को सौंप दिया गया। इनकी कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं :–

अर्द्धनारीश्वर, ढलती रात, होरी आदि उपन्यास
हत्या के बाद, अब और नहीं आदि (नाटक)

संघर्ष के बाद, आदि और अंत आदि (आत्मकथा)
'आवारा मसीहा' (जीवनी)
ज्योतिपुंज हिमालय, जमुना गंगा के नैहर में (यात्रा वृतांत)
'अर्द्धनारीश्वर' उपन्यास के लिए इन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था। इसके अलावा मूर्तिदेवी सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार इत्यादि भी मिले हैं।

संस्मरण परिचय

डॉ विनायक कृष्ण गोकाक कन्नड़ के एक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं मधुर विचारों से उन्होंने सभी को प्रभावित किया है। अध्यापक से लेकर उप कुलपति तक के पदों को सुशोभित करने वाले श्री गोकाक जी ने अपने सेवाकाल के दौरान कभी भी अपने विचारों को किसी पर थोपा नहीं। विष्णु प्रभाकर जी को गोकाक जी के साथ केन्द्रीय साहित्य अकादमी में पाँच साल तक काम करने का मौका मिला। इस अल्प समय में गोकाक जी के जिन गुणों और विचारों ने विष्णु प्रभाकर को प्रभावित किया, उन्हीं के आधार पर इस संस्मरण को लिखा गया है।

***

7. बेंच की संवेदना

– ज्ञानचन्द मर्मज्ञ

कभी यह शहर गाँव हुआ करता था जहाँ की ठंडी हवाएं स्वयं लोगों को पालने में बिठाकर लोरी सुनाया करती थीं। आर्थिक विपन्नता तो बहुत थी परन्तु खुशियाँ भी कम नहीं थीं। लोगों का मन गाँव में बहती हुई नदी की तरह स्वच्छ और पारदर्शी था। छोटी छोटी नैसर्गिक खुशियों में जीवन की सम्पूर्णता ढूंढ़ लेने की कला सभी को आती थी। आवश्यकताएं कम और सहज हुआ करती थीं। लोग भोले, सरल, मेहनती और ईमानदार होते थे। पूरा गाँव एक परिवार की तरह रहता था। सुख और दुःख सभी आपस में मिलकर बाँट लिया करते थे। इनके विश्वास और प्रेम की रखवाली गाँव के बरगद, पीपल और नीम किया करते थे जिनकी जड़ें लोगों की जड़ों से गुंथी हुई थीं। सूरज की पहली किरण के साथ ही यहाँ हर दिन स्वर्ग उतर आता था जिसकी मनोहर आभा रात होते ही कच्ची मिट्टी के बने घरों के बाहर टिमटिमाती हुई लालटेन की मद्धिम रोशनी में पसरकर तारों से भरे आकाश में परिवर्तित हो जाया करती थी।

सांस्कृतिक मूल्यों, लोक परम्पराओं और मानवीय गुणों से लबालब भरे इस गाँव पर एक दिन क्रूर शहर की नज़र पड़ गयी और वह धीरे धीरे इसे भूखे अज़गर की तरह लीलने लगा। बरगद और पीपल के पत्ते पीले पड़ गए। नीम की पत्तियाँ भयग्रस्त होकर डालियों से चिपक गयीं। व्याकुल नदी अपनी लहरों को आँचल में छिपाकर तटबंधों की गोद में सर रखकर सिसकने लगी। चहचहाते पंछी अचानक चुप हो गए और बार बार अपने घोसलों में सोये हुए नन्हें नन्हें, सलोने, फूल से बच्चों को देखकर सोचने लगे कि इन्हें लेकर आखिर कहाँ जायँ। कभी सोचा भी नहीं था कि परिवर्तन की आँधी इनका सबकुछ उड़ा ले जाएगी और इन्हें प्रवासी होने पर विवश कर देगी। गाँव वालों का प्रेम उनकी आँखों से आंसू बनकर उमड़ने लगा। पेड़ कटने लगे, नदियां सूखने लगीं,

जीवित मिट्टी का गला दबाकर उसे मार डाला गया। उसके कोमल अंगों पर कृत्रिम रसायन का मोटा लेप लगाकर उसे इतना कठोर बना दिया गया कि उसे बार बार रौंदा जा सके। खेतों को निर्दयतापूर्वक सड़क बना कर लोग इतने प्रसन्न हुए कि 'अन्नपूर्णा की ममता' का विलाप भी किसी ने नहीं सुना। विकास के सुनहरे भविष्य के नाम पर हरीतिमा का विस्तार करने वाली भूमि को बंजर में बदल दिया गया। देखते ही देखते पीढ़ियों की संचित मान्यताएं चरमरा कर ध्वस्त हो गयीं और मानव मूल्य बिखरने लगे। चौपाल पर गुमसुम पड़ी लकड़ी की बेंच नैसर्गिक छटा से संपन्न गांव के प्राकृतिक सौंदर्य को उजड़ते हुए बेबसी से देखती ही रह गयी और गांव को कृत्रिमता का आकर्षक लिबास पहनाकर शहर बना दिया गया। लोग चौपाल का रास्ता भूल गए और बेचारी बेंच सुनसान चौपाल पर अकेली पड़ी रह गयी।

पत्थरों के शहर में जब सांसें कम पड़नी लगीं तो लोगों ने उजड़े हुए निर्वासित चौपाल को पार्क में बदल दिया। वर्षों से उपेक्षित बेंच को मानों नया जीवन मिल गया। वर्षों पहले जब किसी ने अपनी सुविधा के लिए पेड़ के कुछ टूटे हुए मजबूत हिस्सों को चुनकर गांव के चौपाल के कोने में सलीके से जोड़कर इसे बेंच का रूप दिया होगा तो कभी सोचा भी नहीं होगा कि यह निर्जीव बेंच धीरे धीरे मनुष्यों की संवेदना का अनुभव करने लगेगी। गांव के चौपाल से लेकर शहर के पार्क तक न जाने कितने लोग इस बेंच पर बैठे होंगे यह तो इसे याद नहीं है परन्तु इतना अवश्य याद है कि उस पर बैठने वाले प्रायः सभी लोग अपने अंदर एक उफनती हुई नदी लेकर आते हैं जिसकी तरंगे इसे अक्सर भिगो दिया करती हैं। उन लहरों में कभी खुशियों का असीमित उत्कर्ष हुआ करता है तो कभी दुःख की अथाह पीड़ा। सत्य अनुभूतियों के अनगिनत थपेड़ों के संस्पर्शों से प्रस्फुटित प्रखर संवेदनशील तत्वों के अति विकसित अणुओं ने एक दिन इस निर्जीव बेंच की सुसुप्त संवेदना को जागृत कर दिया। उसके

निष्प्राण देह की सूखी रगों में प्राण के अंश प्रवाहित होने लगे। इस अद्भुत परिवर्तन की सुखद अनुभूतियों ने उसे विस्मित कर दिया। पेड़ से कटने के बाद उसने कभी इस पुनर्जन्म की कल्पना भी नहीं की थी। उसे पहली बार अपनी उपयोगिता का आभास हुआ जिसके सुख का अनुभव कर वह आनंदित हो उठी। दूसरों के लिए बहुत कुछ करने की ललक उसके मन में हिलोरे लेने लगीं परन्तु वह चाह कर भी कुछ नहीं कर सकती थी। आसपास घटने वाली घटनाएँ उसे विचलित करने लगीं। दिन–प्रतिदिन उसकी संवेदना प्रखर होती गयी और धीरे धीरे उसके मन का हर कोना मानव जनित घटनाओं से व्यथित होने लगा। ये घटनाएं जैसे जैसे उसके जीवन के खुरदुरे पन्नों पर नया अध्याय लिखती गयीं वैसे वैसे उसकी सोच और संवेदनशीलता पूर्णमासी के चाँद की तरह निखरती चली गयी। जिस दिन उसे पानी और आंसू में अंतर समझ में आया था उस दिन वह घंटों रोती रही। उसे अच्छा लग रहा था कि वह मनुष्यों की तरह सोच सकती है, समझ सकती है परन्तु उसे यह अच्छा नहीं लग रहा था कि ये मनुष्य सब कुछ जानते हुए भी पानी और आंसू के अंतर को क्यों भूल जाते हैं?

पार्क में आने वाले हर व्यक्ति को वह बड़े ही ध्यान से देखती थी और उनकी पड़ताल किया करती थी। उनके बदन की भंगिमा और चलने के ढंग से उनके मन की छटपटाहट को बड़ी आसानी से पढ़ लिया करती थी। पार्क में टहलने वाला हर व्यक्ति उसके लिए एक प्रश्न होता था और उस पर बैठने वाला व्यक्ति एक पहेली, जिसे सुलझाने का वह भरसक प्रयास करती थी। इस प्रक्रिया में वह उनके जीवन में उतरकर बहुत ही सूक्ष्मता से हर आयाम का विश्लेषण किया करती थी। पहले उनकी बातें सुनकर उनके व्यवहार के अंतिम छोर तक पहुंचती थी फिर उन्हें स्पर्श कर उनकी अनुभूतियों को बड़े सलीके से अपने विचारों में ढाल देती थी। यह महसूस करके उसका मन दुखी हो जाया करता

था कि हर व्यक्ति की सोच उसी के चारो ओर भटक रही है, उसके आसपास क्या हो रहा है इस बारे में वह पूरी तरह अनभिज्ञ है। अपनी छटपटाहट को अपने मन में दबाये हुए सभी एक–दूसरे को देखकर मुस्कुरा तो रहे हैं परन्तु उनके अंदर एक ज्वालामुखी धधक रहा है। इतनी असीमित इच्छाओं के साथ विखंडित सोच की बैसाखियों के सहारे चलते हुए मनुष्यों को देखकर उसका हृदय छलनी हो जाया करता था। सोचने लगती, गांव के वो दिन कितने अच्छे थे, लोगों के व्यवहार में कितना अपनत्व, कितनी मिठास, कितना खुलापन हुआ करता था। सभी के मन में शांति, मुख पर प्रसन्नता और हृदय में संतुष्टि हुआ करती थी। ये सब आज किसी के पास नहीं है। आज लोगों के पास पैसा, सुविधा, सम्पन्नता और अनगिनत साधन हैं परन्तु आंतरिक सुख का एक भी सामान नहीं है। जीवन को तराशने की होड़ में लोग जीवन से ही दूर हो गए हैं। पार्क में लोगों को टहलते हुए देखकर उसे संतोष होता था कि लोग एक एक साँस जोड़ने की होड़ में लगे हैं, लोगों के अंदर जीने की इच्छा तो प्रबल है परन्तु वे किसलिए जीना चाहते हैं यह किसी को भी नहीं मालूम। दृष्टि की चिंता सभी को है परन्तु दृष्टिकोण की चिंता किसी को नहीं है। कितनी पीड़ा होती है जब पार्क में कई लोग इकट्ठे होकर जोर–जोर से ताली बजाते हैं, खुश होने का अभिनय करते हैं और कृत्रिम हंसी चेहरे पर पोत लेते हैं। समझ में नहीं आता,जो अपने अंदर है ही नहीं उसे बाहर ढूँढ़ने का क्या अभिप्राय? प्रकृति प्रदत्त आंतरिक हंसी के स्पंदन की परछाई को इस तरह जबरन चेहरे पर मढ़ कर भला कौन–सा सुख मिल पायेगा?

कितना कुछ बदल गया है। मनुष्य जितना संपन्न हुआ है उतना ही बेबस हो गया है। पहले लोग जीवन की खुशियां बाँटने की बातें किया करते थे परन्तु आज एक–दूसरे की खुशियां छीनने की बात करते हैं। जीवन के मूल में जहाँ हमारे पुरुखों ने आनंद की स्थापना की थी उसका स्थान उलझन, पीड़ा, विषाद,

मृग–तृष्णा, बेबसी और भय ने ले लिया है। लोगों को न जाने क्या खोने का डर है। लोग अपनी परिणति अपने हाथों से लिख रहे हैं और किसी पूर्व नियोजित घटना की तरह घटित होते जा रहे हैं। उनकी छटपटाहट का सबसे बड़ा कारण उनकी अपनी लालसा और दूषित विचार है। वे इसे अच्छी तरह जानते हैं परन्तु जान बूझकर अनभिज्ञ बने हुए हैं। मनुष्य होने की प्रस्तावना पर उन्होंने स्वयं प्रश्नचिह्न लगाया है। जीने का स्वांग रचने वाले ये लोग स्वयं अपनी हत्या के दोषी हैं।

बूढ़ी बेंच ने कई पीढ़ियों का उदय और अवसान देखा है। लोगों को प्रकृति के सुंदरतम सृजन 'मानव देह' की झूठी विश्वसनीयता के बल पर समय को चुनौती देते हुए देखा है और समय के उसी चुम्बकीय गर्भ में लोगों को समय – असमय समाते हुए भी देखा है। जिन बच्चों की निश्छल हँसी को चिड़ियों का स्वर बनते हुए देखा है उन्हीं बच्चों के चहकते बचपन को उम्र की सीढ़ी पर पांव दर पांव चढ़ते हुए बुढ़ापे की असहाय सिसकियों में ढलते हुए भी देखा है। यहाँ कुछ भी सहेजने जैसा नहीं है सिवाय विचारों की सुंदरता और जीवन–मूल्यों के। पारदर्शी जीवन को लोगों ने विभिन्न प्रकार के आडम्बरों से ढक रखा है। समय सभी को स्वयं को साधने का पर्याप्त समय देता है परन्तु समय को क्रूर कहने वाला मनुष्य समय से भी आगे निकलने की चाह में अपना सब कुछ गँवा बैठता है। अपने जीवन की लम्बी यात्रा में इस बेंच ने गुमान करने वाले न जाने कितने लोगों के मानसिक तत्वों को तार तार होकर बिखरते हुए देखा है। अशेष को शेष और विशेष को अवशेष होते हुए देखा है। समय के परिवर्तन की इस अग्नि में और भी बहुत कुछ झुलसा है इतना कि आँखें बंद होने पर भी सब कुछ साफ दिखाई देता है। किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी कि इतने अल्प समय में मानवीय गरिमा का इतना पतन हो जायेगा। वैचारिक मूल्यों की आत्मा पल–पल टूटकर बिखर रही है। समाज की नींव जो ऊँचे आदर्शों और आचरण की शुचिता पर डाली गई थी उस पर टिकी सामाजिक प्रतिबद्धताओं की हाट में

नैतिकता खुले आम नीलाम की जा रही है। सभ्यताओं को विघटित और अपमानित होते देखकर भी लोग चुप हैं। यह सब देखकर बेंच की संवेदना चिग्घाड़ उठती है फिर भी मनुष्य की तन्द्रा भंग नहीं होती। यह जानते हुए भी कि शरीर नश्वर है, सांसें सीमित हैं, धरती पर उनका अस्तित्व प्रकृति के अतिथि से अधिक कुछ भी नहीं है फिर भी वे स्वयं से ऊपर उठकर नहीं सोचते और अपने अहंकार और व्यामोह की कंदराओं से बाहर नहीं निकल पाते ! सब कुछ जानते हुए भी लोग विघटन के रास्ते पर चल कर सामाजिक विकृतियों के कारक बन रहे हैं। मनुष्य प्रकृति का एकमात्र ऐसा प्राणी है जो अपने हाथों से विष घोलकर स्वयं पी रहा है।

विकास अति आवश्यक है परन्तु विकास के नाम पर आधुनिकता का जो ज़हर बोया जा रहा है वह प्राणघातक है। ऐसा विकास जो जीवन से तादात्म्य स्थापित न कर सके भला किस काम का। विकास और विध्वंस की कहानी एक–दूसरे के सापेक्ष चलती है। विकास ने जब भी संतुलन खोया है विध्वंस का जन्म हुआ है। विकास का सपना सबको प्रिय है और यह समाज की नितांत आवश्यकता भी है परन्तु विकास की दिशा, गति, सीमा और परिणाम के बारे में भी विमर्श होना आवश्यक है। विकासजन्य परिस्थियों में हमारी पहचान और संवेदना कितनी सुरक्षित है इसका भी पूर्व निर्धारण होना ज़रूरी है। आर्थिक व्यामोह और आधुनिकताजन्य विकृतियां अगर मानवीय संबंधों की गरिमा को कलंकित करने लगें और सांस्कृतिक क्षरण का कारण बन जाँये तो समझ लेना चाहिए कि हम जिस विकास के नाम पर गौरवान्वित हो रहे हैं वह हमें विध्वंस की ओर ले जा रहा है। और आज हम उसी स्थिति से गुज़र रहे हैं। बेंच बहुत उदास और उदिग्न है। उसने तो गाँव से शहर बनने की प्रक्रिया और फिर उसके आधुनिकीकरण में सकारात्मक भविष्य की परिकल्पना की थी और कभी सोचा भी नहीं था कि शहर में गाँव की छटपटाहट इतने वर्षों बाद भी जीवित रहेगी। बेचारी बूढ़ी बेंच के लिए यह सब और अधिक देख पाना संभव नही था। वह कमजोर और बीमार अवश्य थी परन्तु टूटी नहीं थी। प्रकृति की सबसे

सुन्दर संरचना 'मनुष्य' की आदिम संस्कृति को और अधिक विसर्जित होते हुए नहीं देख सकती थी। उसने निर्णय लिया कि मनुष्य की आने वाली पीढ़ियों की आहुति इस अग्नि कुंड में नहीं होने देगी और सभ्यता विहीन विकास के विरोध में अपनी आवाज़ उठाएगी परन्तु उसकी आवाज़ आजतक किसी ने भी नहीं सुनी।

आज भी शहर के पार्क में उदास पड़ी बेंच हर उस व्यक्ति में मनुष्यता की जड़ें ढूंढती है जो उस पर थोड़ी देर के लिए बैठता है। उसकी आँखें आज भी टकटकी लगाए उस व्यक्ति का रास्ता देख रही हैं जो विस्थापित हुए मानव संस्कृति को विकास की ऊँची-ऊँची मीनारों में पुनः स्थापित कर सके। उसे विश्वास है कि वह दिन अवश्य आएगा जब उसकी आवाज़ क्रांति का उद्घोष बनकर पूरी प्रखरता से उभरेगी बस डर इस बात का है कि तब तक कहीं देर न हो जाये।

क्या आपने किसी पार्क में कभी किसी बेंच की आवाज़ सुनी है? अगर नहीं तो सुनने का प्रयास अवश्य कीजिये, क्या पता आप के कारण दरकती हुई मानवीय मूल्यों की विरासत पूरी तरह तिरोहित होने से बच जाय और विकास एवं सभ्यता का तालमेल संतुलित हो जाय।

***

ज्ञानचंद मर्मज्ञ :

बनारस की रसमयी धरती के पास स्थित एक छोटे से कस्बे सैद्पुर में जन्मे श्री ज्ञानचंद मर्मज्ञ समकालीन कविता व निबंध के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में जाने जाते हैं। जन्म से भारतीय, शिक्षा से अभियंता, रोजगार से उद्यमी और स्वभाव से कवि एवं लेखक श्री ज्ञानचंद मर्मज्ञ अपेक्षाकृत कम हिन्दी भाषी क्षेत्र बेंगलुरु में राष्ट्र–भाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार और विकास के साथ–साथ स्थानीय भाषा के साथ समन्वय के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। आपकी रचनाएँ राष्ट्रीय स्तर की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं और दूरदर्शन एवम् आकाशवाणी के कार्यक्रमों में भी आपकी सहभागिता रहती है। आप भारत सरकार के संचार मंत्रालय द्वारा टेलीकॉम डिस्ट्रिक्ट, बैंगलोर के सलाहकार समिति के मनोनीत सदस्य हैं।

आपके निबंध संग्रह 'संभव है' में प्रकाशित निबंधों 'कबूतर की व्यथा' और 'काश, हम थोड़ा इंसान बन पाए होते' को बैंगलोर विश्वविद्यालय के स्नातक के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त रेवा विश्वविद्यालय बेंगलूरू, रत्नावेल सुब्रमणियम कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड साइंस, सुलूर, कोयम्बटूर (तमिलनाडु) और सी. एम. आर. इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट बेंगलूरू के पाठ्यक्रमों में इनकी रचनाएँ शामिल की गई हैं।

आपकी प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ हैं :–

'मिटटी की पलकें' (काव्य संग्रह), 'संभव है' (निबंध संग्रह), 'बालमन का इंद्रधनुष' (बाल कविताओं का संग्रह) एवं 'खूँटी पर आकाश' (निबंध संग्रह)

आप अखिल भारतीय साहित्य साधक मंच के संस्थापक अध्यक्ष हैं और आपके कुशल सम्पादन में मंच द्वारा साहित्यिक मासिक पत्र 'साहित्य साधक मंच' का प्रकाशन हो रहा है। आपके निबंध संग्रह 'संभव है' को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का बाबू गुलाब राय सर्जना पुरस्कार से पुरस्कृत

किया गया है। इसके साथ ही आपको अहिन्दी भाषी क्षेत्र में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में उल्लेखनीय योगदान के लिए विद्या वाचस्पति, भाषा–भूषण, कलम कलाधर, कीर्ति–भारती, राष्ट्र–गौरव, साहित्य भूषण आदि अनेक पुरस्कार व सम्मान भी मिले हैं।

'बेंच की संवेदना' : प्रस्तुत निबंध में लेखक ने विकास और मानव सभ्यता के संबंधों का विश्लेषण करते हुए यह कहने का प्रयास किया है कि विकास के साथ साथ हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण के बारे में भी विचार करना चाहिए। आज समाज में तरह तरह की विसंगतियां जन्म ले रही हैं, सामाजिक विकृतियां चरम सीमा पर हैं और मानवीय मूल्य विघटित होते जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हम विकास की तीव्र गति में यह भी भूल गए हैं कि मनुष्य की मनुष्यता उसके मानवीय गुणों के कारण होती है जो उसकी जड़ों में संग्रहीत होती हैं न कि विकास की ऊँची मीनारों में। इन जड़ों तक हमें हमारी सांस्कृतिक विरासत एवं सनातन मूल्यवत्ता ही पहुंचा सकती है, जिसे हमें विकास के साथ संरक्षित रखने की आवश्यकता है। अगर हम एकतरफा विकास की ओर अग्रसर होते हैं तो यह आने वाली पीढ़ियों के लिए घातक और मानवता के लिए अभिशाप सिद्ध होगा। प्रस्तुत लेख में लेखक यह सोचकर चिंतित है कि विकास की ऊंचाइयों पर बैठकर भी अगर हम अधूरा और खालीपन का अनुभव करते हैं तो ऐसे विकास का भला क्या औचित्य। इसीलिए लेखक सभ्यता और विकास के संतुलन की बात करता है। एक बेंच के माध्यम से इस लेख में इस बात की पुष्टि की गयी है कि मनुष्य बने रहने के लिए मानव सभ्यता को बचाना हमारा प्रथम कर्तव्य है।

***

8. यूनीकोड – एक परिचय

– केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान,
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार

वर्तमान युग में विज्ञान के बढ़ते कदमों ने सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा मानव की प्रगति के असीम द्वार खोल दिए हैं और मानव को घर बैठे ही विश्व से जोड़ दिया है जिसमें भाषा प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण योगदान है।

जैसा कि विदित है कि विभिन्न कंपनियों द्वारा तैयार किए गए फोंट्स एवं की–बोर्ड्स की मदद से कंप्यूटर पर अंग्रेजी के अलावा भारतीय भाषाओं सहित विश्व की अन्य भाषाओं का प्रयोग नब्बे के दशक से ही प्रारंभ हो गया था, इसके बावजूद अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाएँ कंप्यूटर पर पिछड़ी ही रहीं। यद्यपि हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएँ ध्वनि प्रक्रिया, रूप प्रक्रिया एवं वाक्य विन्यास की व्यापकता से विश्व की अनेक भाषाओं की तुलना में अधिक व्यवस्थित, सुनियोजित तथा कंप्यूटर प्रोग्रामिंग की दृष्टि से आदर्श थीं, लेकिन इंटरनेट पर हिन्दी सहित अन्य भाषाओं के सफल न हो पाने का कारण उनके अनेक फोंट उपलब्ध होना था। आकार (बिट्स) में भिन्नता के कारण ये फोंट्स एक–दूसरे को सपोर्ट नहीं करते थे। किसी फोंट की कोडिंग 7 बिट की थी तो किसी की 8 बिट की। इसीलिए जिस फोंट में कंप्यूटर पर हिन्दी में कार्य किया जाता था उसका अन्य कंप्यूटर्स पर होना अनिवार्य था, ऐसा न होने पर दूसरे कंप्यूटरों पर वह कार्य व्यर्थ हो जाता था, क्योंकि उसे पढ़ा नहीं जा सकता था और न ही उसमें संशोधन कर पाना संभव था। इसके अलावा हिन्दी अर्थात् देवनागरी लिपि में ई–मेल भेजना, फाइल का नाम सहेजना आदि भी संभव नहीं था। इतना ही नहीं विभिन्न ब्राउज़रों, यथा– इंटरनेट एक्सप्लोरर, गूगल क्रोम, फायर फोक्स, मोज़िला आदि पर हिन्दी अर्थात् देवनागरी लिपि में सर्च कर पाना भी संभव नहीं था। इन सब कार्यों के न हो पाने का प्रमुख कारण हिन्दी के फोंट्स में एकरूपता का अभाव और किसी कॉमन कोड का न होना था।

कमोवेश यही स्थिति अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं की भी थी।

इन सभी समस्याओं के निराकरण एवं अंग्रेजी के समान दुनिया की अन्य भाषाओं को कंप्यूटर एवं इंटरनेट के योग्य बनाने के लिए जब वैज्ञानिकों, गणितज्ञों, भाषाविदों की टीमों ने कंप्यूटर विशेषज्ञों के साथ विचार–विमर्श किया तो यह महसूस किया गया कि एक ऐसी 'एनकोडिंग प्रणाली' विकसित की जाए जिसकी मदद से दुनिया की सभी लिखित भाषाओं को कंप्यूटर एवं इंटरनेट के योग्य बनाया जा सके और भाषाओं के क्षेत्र में एक अंतरराष्ट्रीय मानक तैयार किया जाए, ताकि कंप्यूटर पर सभी भाषाओं का प्रयोग समान रूप से किया जा सके।

इसके लिए अमरीका में 'यूनिवर्सल एनकोडिंग कंसोर्टियम' की स्थापना की गई। इस कंसोर्टियम में सभी देशों की सरकारों के प्रतिनिधि शामिल हुए। भारत का सूचना प्रौद्योगिकी विभाग इस कंसोर्टियम का सदस्य है। काफी रिसर्च के बाद कंसोर्टियम द्वारा 16 बिट प्रणाली की एनकोडिंग को मान्यता प्रदान कर दी गई। इस संपूर्ण प्रक्रिया को यूनीवर्सल से 'यूनी' एवं 'एनकोडिंग' से 'कोड' आंशिक शब्दों को ग्रहण करके नाम दिया गया 'यूनीकोड'। अपने नाम के अनुरूप यूनीकोड, भाषाओं के माध्यम से सूचनाओं के आदान–प्रदान की एक विश्वव्यापी व्यवस्था के रूप में स्थापित हो गया। जिसमें अंग्रेजी के अलावा हिन्दी सहित विश्व की अन्य सभी भाषाएँ, जिनकी लिपि उपलब्ध है, शामिल हैं। ये भाषाएँ अब यूनीवर्सल हो गई हैं अर्थात् उनसे दुनिया के किसी भी कंप्यूटर पर कार्य किया जा सकता है।

ये सभी भाषाएँ विंडोज़–2000 वाले आपरेटिंग सिस्टम में ऐच्छिक रूप में तथा इसके बाद आने वाले सभी ऑपरेटिंग सिस्टम्स, यथा– विंडोज़, एक्सपी, विंडोज़ विस्टा, विंडोज़–7. विंडोज़–8, विंडोज़ 8.1 तथा विंडोज़ 10 आदि में डिफ़ॉल्ट रूप से अन्तर्निहित (Inbuilt) हैं। ऐसी विंडोज़ को यूनीकोड समर्थित विंडोज़ कहा जाता है। हिन्दी तथा अन्य

भाषाओं में कार्य करने के लिए जहाँ विंडो–2000 तथा विंडो–एक्स्पी में यूनीकोड को सक्षम (Enable) कर की–बोर्ड ड्राइवर स्थापित करने पड़ते थे, वहीं अब प्रत्येक विंडोज़ में यूनीकोड पहले से सक्षम (Enable) आ रहा है, केवल की–बोर्ड ड्राइवर स्थापित करके अब हिन्दी सहित दुनिया की किसी भी भाषा में कंप्यूटर पर कार्य किया जा सकता है।

कंप्यूटर पर हिन्दी भाषा में कार्य करने के लिए मुख्य रूप से तीन प्रकार के की–बोर्ड (देवनागरी इनस्क्रिप्ट, रेमिंगटन टाइपराइटर तथा फोनेटिक इंग्लिश) उपलब्ध हैं। कंप्यूटर पर की–बोर्ड सक्षम (Enable) करने के दो तरीके हैं। पहला कंट्रोल पैनल में जाकर हिन्दी भाषा का चयन करके उसके साथ दिए हुए नक्ष (Inscript) की–बोर्ड को सिलेक्ट करने से यह सक्षम (Enable) हो जाता है और इसकी मदद से हिन्दी में टंकण कार्य किया जा सकता है। इसे यूनीवर्सल की–बोर्ड भी कह सकते हैं। देवनागरी इनस्क्रिप्ट की–बोर्ड से न केवल हिन्दी में टंकण कार्य करना सरल हुआ है, बल्कि इससे टंकण की गति भी बढ़ जाती है। इसके अलावा सक्षम (Enable) की–बोर्ड से टंकण करने वाले व्यक्ति अन्य भारतीय भाषाओं, जिन्हें वे लिखना–पढ़ना जानते हैं, में भी टंकण करने में सक्षम हो जाते हैं।

कंप्यूटर पर की–बोर्ड सक्षम (Enable) करने का दूसरा तरीका यह है कि http://bhashaindia.com या ildc.gov.in से यूनीकोड समर्थित रेमिंगटन अथवा फोनेटिक इंग्लिश की–बोर्ड को डाउनलोड करके कंप्यूटर में प्रस्थापित (Install) कर देने से ये की–बोर्ड सक्षम (Enable) हो जाते हैं और इनकी सहायता से कंप्यूटर पर हिन्दी में टंकण कार्य किया जा सकता है।

रेमिंगटन की–बोर्ड परंपरागत की–बोर्ड है तथा दस्ती टंकण मशीन (Manual Typewriter) के ज़माने से चला आ रहा है। जिन व्यक्तियों ने दस्ती टंकण मशीन (Manual Typewriter) पर हिन्दी टंकण

(Typing) सीखी हुई है उनके लिए यह की–बोर्ड सुविधाजनक है, क्योंकि इसके उपयोग से उन्हें दोबारा टाइपिंग सीखने की आवश्यकता नहीं है। यह की–बोर्ड http://bhashaindia.com वेबसाइट पर डाउनलोड्स में Indic-2 एवं Indic-3 नाम से उपलब्ध है। जहाँ Indic-2 की–बोर्ड का प्रयोग विंडोज़ एक्स्पी, विंडोज़ विस्टा एवं विंडोज़–7 में टंकण कार्य करने के लिए किया जाता है वहीं Indic-3 का प्रयोग विंडोज़–8 एवं उसके बाद वाली विंडोज़ के लिए किया जाता है।

यद्यपि फोनेटिक इंग्लिश की–बोर्ड्स का चलन काफी तेजी से बढ़ रहा है तथापि इसके प्रचलित विभिन्न रूपों में अभी तक एकरूपता स्थापित नहीं हो पायी है। फोनेटिक इंग्लिश के प्रमुख की–बोर्ड 'माइक्रोसॉफ्ट इंडिक लैंगवेज इनपुट टूल्स' तथा गूगल का 'गूगल इनपुट टूल्स (हिन्दी)' हैं। ये दोनों ही 'की–बोर्ड्स' क्रमशः http://bhashaindia.com/ilit तथा google.com/inputtools/windows से निशुल्क डाउनलोड किए जा सकते हैं। इनके अलावा भी सी–डैक, बरहा आदि अनेक कंपनियों के फोनेटिक इंग्लिश 'की–बोर्ड्स' इंटरनेट पर उपलब्ध हैं।

कंप्यूटर पर हिन्दी भाषा से संबंधित उक्त की–बोर्ड्स को प्रस्थापित (Install)/सक्षम (Enable) करने के बाद किसी भी एप्लीकेशन, यथा–एम.एस.वर्ड, एक्सेल, पावर प्वाइंट, ई–मेल आदि में हिन्दी भाषा में सरलता और सहजता से कार्य किया जा सकता है। इसके लिए पहला क्लिक वहां करना चाहिए जहां टंकण कार्य किया जाना है। उसके बाद टास्क बार में हिन्दी भाषा का चयन करके अपनी पसंद के की–बोर्ड का चयन करना चाहिए। तत्पश्चात सक्रिय अनुप्रयोग (Active application) में हिन्दी में कार्य करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

यदि हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी अथवा किसी अन्य भाषा में कार्य करने की आवश्यकता महसूस हो तो उस भाषा से संबंधित की–बोर्ड ड्राइवर्स को प्रस्थापित (Install) करके Shift+Alt Key को एक साथ Press

करके इच्छित भाषा का चयन किया जा सकता है।

आप जानते ही हैं कि आज अधिकतर कार्यालयों में माइक्रोसॉफ्ट के आपरेटिंग सिस्टम तथा एप्लीकेशन साफ्टवेयर का प्रयोग किया जा रहा है। अत: माइक्रोसॉफ्ट वर्ड, एक्सेल, पावरपॉइंट आदि का संक्षिप्त परिचय यहाँ उपलब्ध किया जा रहा है।

माइक्रोसॉफ्ट वर्ड (MS Word) : एमएस वर्ड माइक्रोसॉफ्ट एप्लीकेशन का एक भाग है। इसमें पत्रों को टाइप करना, रिपोर्ट बनाना, टेबल बनाना और मेलिंग लिस्ट आदि तैयार करना अत्यधिक सुविधाजनक है।
माइक्रोसॉफ्ट वर्ड में किए गए कार्यों और संरक्षित की गई फाइलों को आवश्यकतानुसार कभी भी संशोधित एवं परिवर्तित किया जा सकता है। इसके अंतर्गत वर्तनी और व्याकरण की अशुद्धियों की जाँच कर सुधार किया जा सकता है। माइक्रोसॉफ्ट वर्ड में हिंदी में कार्य करते समय भी सभी शार्ट कट Keys का प्रयोग सहजता से किया जा सकता है। चाहे वे वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को सभी जगहों पर खोजना और शुद्ध शब्द को प्रविष्ट करने (find and replace) का काम हो अथवा फाइल खोजने संबंधी कार्य हों। शब्दों के विकल्पों की उपलब्धता से प्रयोगकर्ता सटीक शब्द का चयन कर पाठ में विविधता ला सकता है।

लिखित पाठ की रूपरेखा (appearance) को अधिक सुंदर, आकर्षक एवं सुपाठ्य बनाने हेतु विभिन्न फोंट, फोंट आकार, शैली एवं रंगों के उचित सामंजस्य के साथ–साथ दस्तावेजों में फोटो, शेप, क्लिप आर्ट और चार्ट आदि ग्राफिकल ऑब्जेक्ट्स का प्रयोग भी किया जा सकता है। पृष्ठ संख्या, पृष्ठ के हाशिए निर्धारित करने के अलावा दस्तावेजों में विशेष सूचनाएं दर्शाने के लिए शीर्षक पंक्ति (header) तथा अंतिम पंक्ति (footer) को भी जोड़ा जा सकता है। इन सबके उपरांत प्रिंट से पूर्व दस्तावेज का Print Preview देखने का विकल्प भी उपलब्ध रहता है।

माइक्रोसॉफ्ट एक्सेल (MS Excel) : लेखा एवं गणितीय गणनाओं (Mathematical Calculations) से संबंधित कार्यों के लिए माइक्रोसॉफ्ट एक्सेल का प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा जोड़, घटा, गुणा, भाग तथा अन्य फार्मूलों का इस्तेमाल कर वर्कशील/स्प्रेड शीट पर कठिन से कठिन गणना आदि का कार्य शीघ्रता एवं सुगमता से किया जा सकता है। एमएस एक्सेल आपकी जरूरत के अनुसार गणनाओं का output आपकी स्क्रीन पर प्रदर्शित करता है। एक शीट से पाठ, वैल्यू या फार्मूले को दूसरी जगह कॉपी करने का विकल्प उपलब्ध रहताहै। हर माह के बजट आदि की गणना इससे आसानी से की जा सकती है। एमएस एक्सेल में हिंदी में कार्य करते समय दिए गए शार्टकट 'Keys' का प्रयोग सुगमता से किया जा सकता है।

माइक्रोसॉफ्ट पॉवर पॉइंट (MS Power Point) : सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में किसी भी संस्था का विस्तृत परिचय, उसके लक्ष्य एवं उपलब्धियों का विश्लेषण, व्यावसायिक प्रस्तुतीकरण एवं रिसर्च पेपर आदि का प्रस्तुतीकरण एक महत्वपूर्ण कड़ी है। पॉवर पॉइंट द्वारा इसे प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें दी गई सूचनाएँ/जानकारियाँ अलग-अलग स्लाइड्स में आवश्यकतानुसार दी जा सकती हैं। प्रस्तुतीकरण को प्रभावशाली एवं परस्पर संवादात्मक बनाने के लिए उसमें आवश्यकतानुसार टेक्स्ट, चार्ट, ग्राफिक्स, ऑडियो-वीडियो भी सम्मिलित (insert) किए जा सकते हैं।

***

परिशिष्ट

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली :

1.	Acid	अम्ल
2.	Accelerate	गति वृद्धि
3.	Administrative Reforms	प्रशासनिक सुधार
4.	Advocate General	महाधिवक्ता
5.	Algebra	बीजगणित
6.	Antibiotic	प्रति जैविकी
7.	Astro Physics	खगोल भौतिकी
8.	Atomic Energy	परमाणु ऊर्जा
9.	Bacteria	जीवाणु
10.	Bio Chemistry	जैव रसायनशास्त्र
11.	Calculas	कलन
12.	Cell	कोशिका
13.	Central Statistical Organisation	केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन
14.	Density	घनत्व
15.	Dynamics	गतिकी

16.	Ecology	परिस्थितिकी
17.	Electromotive Force	विद्युत वाहक बल
18.	Equilateral Triangle	समबाहु त्रिभुज
19.	Experiment	प्रयोग
20.	First Aid	प्राथमिक उपचार
21.	Formula	सूत्र
22.	Frequency	आवृत्ति
23.	Funnel	नली, चोंगा
24.	Geologist	भूविज्ञानी
25.	Geometry	ज्यामिती
26.	Global Warming	भू ताप
27.	Hydrogen	उद्जन
28.	Hydro Electricity	पनबिजली
29.	Indian Standards Institute	भारतीय मानक संस्थान
30.	Information Technology	सूचना प्रौद्योगिकी

31.	Kinetic Energy	गतित ऊर्जा
32.	Magnetism	चुम्बकत्व
33.	Mass	वजन
34.	Matter	पदार्थ
35.	Mechnical Engineer	यांत्रिक अभियंता
36.	Molecule	अणु
37.	Ordnance Depot	आयुध डिपो
38.	Perpendicular	लम्बवत, खड़ा
39.	Processing	प्रक्रमण
40.	Radiology	विकिरण चिकित्सा विज्ञान
41.	Radius	त्रिज्या, अद्र्धव्यास
42.	Research Institute	अनुसंधान संस्थान
43.	Sound Process	ध्वनि प्रक्रिया
44.	Standard	मानक
45.	Theorem	प्रमेय

46.	Thermo Dynamic	ऊष्मा गतिकी
47.	Transmission	संप्रेषण
48.	Uniformity	एकरूपता
49.	Union Public Service Commission	संघ लोक सेवा आयोग
50.	Zoology	प्राणि विज्ञान

***